नौ कहानियाँ

* प्रेमचंद
* प्रसाद
* भगवतीचरण वर्मा
* चतुरसेन
* जैनेन्द्र
* चंद्रगुप्त विद्यालंकार
* उग्र
* कमलादेवी चौधरी
* भगवतीप्रसाद वाजपेयी

54169

प्रकाशक
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
त्यागरायनगर * मद्रास-17

54169

नौ कहानियाँ

RC

& CO.
(A.P.)
PUBLISHERS & BOOK SELLERS

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

मद्रास

हिन्दी प्रचार पुस्तकमाला, पुष्प — 52

तीसरा संस्करण
जून, 1975
5

(सर्वाधिकार स्वरक्षित)

दाम : रु. 2·00

64169

O. No. 873
मुद्रक : हिन्दी प्रचार प्रेस,
त्यागरायनगर, मद्रास-17.

दो बातें—

हिन्दी के प्रचार के साथ-साथ हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों से हिन्दी प्रेमियों का परिचय बढ़ता जा रहा है। अभी तक हमारे पाठक ज़्यादातर श्री प्रेमचन्द की कहानियाँ ही पढ़ते रहे। मगर इस संग्रह में हमने भिन्न-भिन्न नौ कहानीकारों की सुन्दर कहानियाँ दी हैं। अलग-अलग लेखकों की कहानियाँ होने की वजह से इस पुस्तक के पढ़ने में शुरू से आख़िर तक दिलचस्पी बनी रहेगी।

इस चुनाव में हमने भाषा और भाव की सरलता पर ज़्यादा ध्यान रखा है; क्योंकि यह पुस्तक थोड़ी हिन्दी जाननेवाले पाठकों के हाथों में भी जानेवाली है। कला की दृष्टि से भी ये कहानियाँ ऊँची मानी जाएँगी, इसमें शक नहीं।

हमने इस संग्रह में जिन लेखकों की कहानियाँ ली हैं, राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के नाते उनकी अनुमति हमें अनायास ही मिली है। अतः हम उन्हें अपना हार्दिक धन्यवाद अर्पित करते हैं।

—प्रकाशक

P. Krishnamoorthy, B. A., Proceed.
ASSISTANT & AGENT,
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA.
TIRUPATI. [A. P]

सूची

				पृष्ठ
1.	होली का उपहार	स्व० प्रेमचन्द	...	7
2.	गूदड़ साईं	स्व० जयशंकर प्रसाद	...	17
3.	प्रायश्चित्त	श्री भगवतीचरण वर्मा	...	20
4.	पट्टी	मिर्ज़ा अजीमबेग चग़ताई	...	29
5.	अपना-अपना भाग्य	श्री जैनेन्द्रकुमार	...	43
6.	गोरा	श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	...	54
7.	देशभक्त	श्री पांडेय बेचन शर्मा, 'उग्र'	...	67
8.	कर्तव्य	श्रीमती कमलादेवी चौधरी	...	74
9.	मिठाईवाला	श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी	...	82
	कठिन-शब्दार्थ		...	92

1. होली का उपहार

प्रेमचन्द

मैकूलाल अमरकांत के घर शतरंज खेलने आये, तो देखा, वह कहीं बाहर जाने की तैयारी कर रहे हैं। पूछा—"कहीं बाहर जाने की तैयारी कर रहे हो क्या भाई? फुरसत हो तो आओ, आज दो-चार बाज़ियाँ हो जाएँ।"

अमरकांत ने संदूक में आईना-कंघी रखते हुए कहा—"नहीं भाई! आज तो बिलकुल फुरसत नहीं है। कल ज़रा ससुराल जा रहा हूँ। सामान ठीक कर रहा हूँ।"

मैकू—"तो आज ही से क्या तैयारी करने लगे? चार क़दम तो है। पहली ही बार जा रहे हो?"

अमर—"हाँ, यार! अभी तक एक बार भी नहीं गया। मेरी इच्छा तो अभी जाने की न थी; पर ससुरजी आग्रह कर रहे हैं।"

मैकू—"तो कल शाम को उठना और चल देना। आध घंटे में तो पहुँच जाओगे।"

अमर—"मेरे हृदय में तो अभी से न जाने कैसे धड़कन हो रही है। अभी तक तो कल्पना में पत्नी-मिलन का आनन्द लेता था। अब वह कल्पना प्रत्यक्ष हुई जाती है। कल्पना सुन्दर होती है, प्रत्यक्ष क्या होगा, कौन जाने?"

मैकू—"तो कोई सौग़ात ले ली है? ख़ाली हाथ न जाना! नहीं, मुँह ही सीधा न होगा।"

अमरकांत ने कोई सौग़ात न ली थी। इस कला में अभी अभ्यस्त न हुए थे।

मैकू बोला—"तो अब ले लो, भले आदमी। पहली बार जा रहे हो भला, वह दिल में क्या कहेंगी?"

अमर—"तो क्या चीज़ ले जाऊँ? मुझे तो इसका ख़्याल ही नहीं आया। कोई ऐसी चीज़ बताओ, जो कम ख़र्च और बालानशीन हो; क्योंकि घर भी रुपये भेजने हैं, दादा ने रुपये माँगे हैं।"

मैकू माँ-बाप से अलग रहता था। व्यंग्य करके बोला—"जब दादा ने रुपये माँगे हैं, तो भला, कैसे टाल सकते हो? दादा का रुपये माँगना कोई मामूली बात तो नहीं है!"

अमरकांत ने व्यंग्य न समझकर कहा—"इसी वजह से तो मैंने होली के लिए कपड़े भी नहीं बनवाये। मगर जब कोई सौग़ात ले जाना भी ज़रूरी है, तो कुछ न कुछ लेना ही पड़ेगा। हलके दामों की कोई चीज़ बतलाओ।"

दोनों मित्रों में बिचार-विनिमय होने लगा। विषय बड़े ही महत्व का था। उसीके आधार पर भावी दांपत्य-जीवन सुखमय या उसके प्रतिकूल हो सकता था। पहले दिन बिल्ली को मारना अगर जीवन पर स्थायी प्रभाव डाल सकता है, तो पहला उपहार क्या कम महत्व का विषय है? देर तक बहस होती रही; पर कोई निश्चय न हो सका।

54169

उसी वक़्त एक फ़ारसी महिला एक नये फ़ैशन की साड़ी पहने हुए मोटर पर निकल गयीं। मैकूलाल ने कहा—'अगर एक ऐसी साड़ी ले लो, तो वह ज़रूर खुश हो जाएँ। कितना सोफ़ियाना रंग है और वज़ा कितनी निराली! मेरी आँखों में तो जैसे बस गयी। हाशिम की दूकान से ले लो। पचीस रुपये में आ जाएगी।"

अमरकांत भी उस साड़ी पर मुग्ध हो रहे थे। वधू वह साड़ी देखकर कितनी प्रसन्न होगी और उसके गोरे रंग पर यह कितनी खिलेगी, वह इसी कल्पना में मग्न थे। बोले—"हाँ, यार! पसंद तो मुझे भी है। लेकिन हाशिम की दूकान पर तो पिकेटिंग हो रही है।"

"तो रहने दो। ख़रीदनेवाले ख़रीदते ही हैं। अपनी इच्छा है, जो चीज़ चाहते ख़रीदते हैं; किसीके बाबा का साझा है?"

अमरकांत ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा—"यह तो सत्य है; लेकिन मेरे लिए स्वयंसेवकों के बीच दूकान में जाना संभव नहीं है। फिर तमाशाइयों की हर दम भीड़ भी तो लगी रहती है।"

मैकूलाल ने मानों उनकी कायरता पर दया करके कहा—"तो पीछे के द्वार से चले जाना। वहाँ पिकेटिंग नहीं होती।"

"किसी देशी दूकान पर न मिल जाएगी?"

"हाशिम की दूकान के सिवा और कहीं नहीं मिलेगी।"

54169

(2)

संध्या हो गयी थी। अमीनाबाद में आकर्षण का उदय हो गया था। सूर्य की प्रतिभा विद्युत-प्रकाश के बुलबुलों में अपनी यादगारी छोड़ गयी थी।

अमरकांत दबे पाँव हाशिम की दूकान के सामने पहुँचे। स्वयंसेवकों का धरना भी था और तमाशाइयों की भीड़ भी। उन्होंने दो-तीन बार अंदर जाने के लिए कलेजा मजबूत किया; पर फूट-पाथ तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

मगर साड़ी लेना ज़रूरी था। वह उनकी आँखों में चुभ गयी थी। वह उसके लिए पागल हो रहे थे।

आख़िर उन्होंने पिछवाड़े के द्वार से जाने का निश्चय किया। जाकर देखा, अभी तक वहाँ कोई वालंटियर न था। जल्दी से एक सपाटे में भीतर चले गये और बीस-पचीस मिनट में उसी नमूने की एक साड़ी लेकर फिर उसी द्वार पर आये; पर इतनी ही देर में परिस्थिति बदल चुकी थी। तीन स्वयं-सेवक आ पहुँचे थे। अमरकांत एक मिनट तक द्वार पर दुविधा में खड़े रहे। फिर तीर की तरह निकल भागे और अंधाधुंध भागते चले गये। दुर्भाग्य की बात! एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई चली आ रही थी। अमरकांत उससे टकरा गये। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी गालियां देने—आँखों में चर्बी छा गयी है क्या? देखकर नहीं चलते? यह जवानी ढल जाएगी एक दिन!

अमरकांत के पाँव आगे न जा सके। बुढ़िया को उठाया और उससे क्षमा माँग रहे थे कि तीनों स्वयंसेवकों ने साड़ी के पैकट पर हाथ रखते हुए कहा—"विलायती कपड़ा ले जाने का हुक्म नहीं है। बुलाता हूँ, तो सुनते ही नहीं!"

दूसरा बोला—"आप तो ऐसे भागे, जैसे कोई चोर!"

तीसर—"हज़ारों आदमी पकड़-पकड़कर जेल में भरे जा रहे हैं। देश में आग लगी है, और इनका मन विलायती माल से नहीं भरता।"

अमरकांत ने पैकट को दोनों हाथों से मज़बूत पकड़ करके कहा—"तुम लोग मुझे जाने दोगे या नहीं?"

पहले स्वयंसेवक ने पैकट पर हाथ बढ़ाते हुए कहा—"जाने कैसे दूँगा? विलायती कपड़ा लेकर आपको यहाँ से कभी भी न जाने दूँगा।"

अमरकांत ने पैकट को एक झटके में छुड़ाकर कहा—"तुम मुझे हरगिज़ नहीं रोक सकते।"

अमरकांन ने आगे क़दम बढ़ाया; मगर दो स्वयंसेवक तुरंत उनके सामने लेट गये। अब बेचारे बड़ी मुश्किल में फँसे। जिस विपत्ति से बचना चाहते थे, वह ज़बरदस्ती गले पड़ गयी। एक मिनट में बीसों आदमी जमा हो गये और चारों तरफ़ से उनपर टिप्पणियाँ होने लगीं।

"कोई जेंटिलमैन मालूम होते हैं।"

"ये लोग अपने को शिक्षित कहते हैं। छिः! इस बूकान पर से रोज़ दस-पाँच आदमी गिरफ़्तार होते हैं; पर आपको इसकी क्या परवाह!"

"कपड़ा छीन लो और कह दो, जाकर पुलिस में रपट करें।"

बेचारे बेड़ियाँ-सी पहने खड़े थे। कैसे गला छुटे, इसका कोई उपाय न सूझता था। मैकूलाल पर क्रोध आ रहा था कि उसीने यह रोग उनके सिर मढ़ा। उसे तो किसी सौग़ात की फ़िक्र न थी। आया वहाँ से कि कोई सौग़ात ले लो।

कुछ देर तक लोग टिप्पणियाँ ही करते रहे, फिर छीना-झपटी शुरू हुई। किसीने सिर से टोपी उड़ा दी। उसकी तरफ़ लपका, तो एक ने साड़ी का पैकेट हाथ से छीन लिया। फिर वह हाथों-हाथ गायब हो गया।

अमरकांत ने बिगड़कर कहा—"मैं जाकर पुलिस में रिपोर्ट करता हूँ।"

एक आदमी ने कहा—"हाँ-हाँ, ज़रूर जाओ और हम सभी को फाँसी चढ़वा दो।"

सहसा एक युवती खद्दर की साड़ी पहने, एक थैली लिये आ निकली। यहाँ यह हुड़दंगा देखकर बोली "क्या मुआमिला है? तुम लोग क्यों एक भले आदमी को दिक़ कर रहे हो?"

अमरकांत की जान में जान आयी। उसके पास जाकर फ़रियाद करने लगे—"ये लोग मेरे कपड़े छीनकर भाग गये

और उन्हें ग़ायब कर दिया। मैं इसे डाका कहता हूँ। यह चोरी है। मैं इसे न सत्याग्रह कहता हूँ, न देश-प्रेम।"

युवती ने दिलासा दिया "घबड़ाइये नहीं। आपके कपड़े मिल जाएँगे। होंगे तो इन्हीं लोगों के पास। कैसे कपड़े थे?"

एक स्वयंसेवक बोला—"बहनजी, इन्होंने हाशिम की दूकान से कपड़े लिये हैं।"

युवती—"किसीकी दूकान से लिये हों, उनके हाथ से कपड़ा छीनने का कोई अधिकार नहीं है। आपके कपड़े वापस ला दो। किसके पास हैं?"

एक क्षण में अमरकांत की साड़ी जैसे हाथों-हाथ गयी थी, वैसे ही हाथों-हाथ वापस आ गयी। ज़रा देर में भीड़ ग़ायब हो गयी। स्वयंसेवक भी चले गये। अमरकांत ने युवती को धन्यवाद देते हुए कहा—"आप इस समय न आ गयी होतीं, तो इन लोगों ने धोती तो ग़ायब कर ही दी थी, शायद मेरी ख़बर भी लेते।"

युवती ने सरल भर्त्सना के भाव से कहा—"जन-सम्मति का लिहाज़ सभी को करना पड़ता है। मगर आपने इस दूकान से कपड़े लिये ही क्यों? जब आप देख रहे हैं कि वहाँ हमारे ऊपर कितना अत्याचार हो रहा है, फिर भी आपने न माना। जो लोग समझकर भी नहीं समझते, उन्हें कैसे कोई समझाये?"

अमरकांत इस समय लज्जित हो गये और अपने मित्रों में बैठकर वह जो स्वेच्छा का राग अलापा करते थे, वह भूल गये।

बोले—"मैंने अपने लिए नहीं ख़रीदे हैं, एक महिला की फ़रमाइश थी, इसलिए मजबूर था।"

"उन महिला को आपने समझाया नहीं?"

"आप समझातीं, तो शायद समझ जातीं, मेरे समझाने से तो न समझीं।"

"कभी अवसर मिला, तो ज़रूर समझाने की चेष्टा करूँगी। पुरुषों की नकेल महिलाओं के हाथ में है! आप किस मुहल्ले में रहते हैं?"

"सआदतगंज में।"

"शुभ नाम?"

"अमरकांत।"

युवती ने तुरंत ज़रा-सा घूँघट खींच लिया और सिर झुकाकर संकोच और स्नेह से सने स्वर में बोली—"आपकी पत्नी तो आपके घर नहीं है, उसने फ़रमाइश कैसे की?"

अमरकांत ने चकित होकर पूछा—"आप किस मुहल्ले में रहती हैं?"

"घसियारी मंड़ी में।"

"आपका नाम सुखदादेवी तो नहीं है!"

"हो सकता है, इस नाम की कई स्त्रियाँ हैं।"

"आपके पिता का नाम ज्वालादत्तजी है?"

"उस नाम के भी कई आदमी हो सकते हैं।"

अमरकांत ने जेब से दियासलायी निकाली और वहीं सुखदा के सामने उस साड़ी को जला दिया।

सुखदा ने कहा—"आप कल आएँगे ?"

अमरकांत ने अवरुद्ध कंठ से कहा—"नहीं सुखदा, अब जब तक इसका प्रायश्चित्त न कर लूंगा, न आऊँगा।"

सुखदा कुछ और कहने जा रही थी कि अमरकांत तेज़ी से क़दम बढ़ाकर दूसरी तरफ़ चले गये।

(1)

आज होली है। मगर आज़ादी के मतवालों के लिए न होली है, न वसंत। हाशिम की दूकान पर आज भी पिकेटिंग हो रही है और तमाशाई आज भी जमा हैं। आज के स्वयं-सेवकों में अमरकांत भी खड़े पिकेटिंग कर रहे हैं। उनकी देह पर खद्दर की धोती है। हाथ में तिरंगा झंडा लिये हैं।

एक स्वयंसेवक ने कहा—"पानीदारों को यों बात लगती है। कल तुम क्या थे, आज क्या हो! सुखदा देवी न आ जातीं, तो बड़ी मुश्किल होती।"

अमर ने कहा—"मैं उनके लिए तुम लोगों को धन्यवाद देता हूँ। नहीं, तो मैं आज यहाँ नहीं होता।"

"आज तुम्हें न आना चाहिए था। सुखदा बहन तो कहती थीं, मैं आज उन्हें न जाने दूंगी।"

"कल के अपमान के बाद अब मैं उन्हें मुंह दिखाने योग्य नहीं हूँ। जब वह रमणी होकर इतना कर सकती हैं, तो हम हर तरह के कष्ट उठाने के लिए बने ही हैं। खासकर जब बाल-बच्चों का भार सिर पर नहीं है।"

उसी वक़्त पुलिस की लॉरी आयी, एक सब-इन्स्पेक्टर उतरा और स्वयंसेवकों के पास आकर बोला—"मैं तुम सोगों को गिरफ़्तार करता हूँ।"

'वन्दे मातरम्' की ध्वनि हुई। तमाशाइयों में कुछ हलचल हुई। लोग दो-दो क़दम और आगे बढ़ आये। स्वयंसेवकों ने दर्शकों को प्रणाम किया और मुस्कुराते हुए लॉरी में जा बैठे। अमरकांत सबसे आगे थे। लॉरी चलना ही चाहती थी कि सुखदा किसी तरफ़ से दौड़ी हुई आ गयी। उसके हाथ में एक पुष्पमाला थी। लॉरी का द्वार खुला था। उसने ऊपर चढ़कर वह माला अमरकांत के गले में डाल दी। आँखों से स्नेह और गर्व की दो बूंदें टपक पड़ीं। लॉरी चली गयी। यह होली थी, यही होली का आनन्द-मिलन था।

उस वक्त सुखदा दूकान पर खड़ी होकर बोली—"विलायती कपड़े ख़रीदना और पहनना देशद्रोह है!"

2. गूदड़ साईं

श्री जयशंकर प्रसाद

"साईं! ओ साईं!!" एक लड़के ने पुकारा। साईं घूम पड़ा। उसने देखा कि एक आठ वर्ष का बालक उसे पुकार रहा है।

आज कई दिन पर उस मुहल्ले में साईं दिखलाई पड़ा है। साईं वैरागी था—माया नहीं, मोह नहीं। परन्तु कुछ दिनों से उसकी आदत पड़ गयी थी कि दोपहर को मोहन के घर जाता, अपने दो-तीन गन्दे गूदड़ यत्न से रखकर उन्हींपर बैठ जाता और मोहन से बातें करता। जब कभी मोहन उसे ग़रीब और भिखमंगा जानकर माँ से आग्रह करके और पिता की नज़र बचाकर कुछ साग-रोटी लाकर दे देता, तब उस साईं के मुख पर पवित्र मैत्री के भावों का साम्राज्य हो जाता। गूदड़ साईं उस समय दस बरस के बालक के समान अभिमान, सराहना और उलाहना के आदान-प्रदान के बाद उसे बड़े चाव से खा लेता। मोहन की दी हुई एक रोटी उसकी अक्षय तृप्ति का कारण होती।

एक दिन मोहन के पिता ने इसे देख लिया। वे बहुत बिगड़े। वे थे पाश्चात्य शिक्षा के रंग में रंगे हुए। ढोंगी फ़कीरों पर उनको साधारण और स्वाभाविक चिढ़ थी। मोहन को डाँटा कि वह इन लोगों के साथ बातें न किया करे। साईं हँस पड़ा और चला गया।

उसके बाद आज कई दिन पर साईं आया और वह जान-बूझकर उस बालक के मकान की ओर नहीं गया ; परन्तु पढ़कर लौटते हुए मोहन ने उसे देखकर पुकारा, और वह भी लौट आया।

"मोहन!"

"तुम आजकल आते नहीं!"

"तुम्हारे बाबा बिगड़ते थे।"

"नहीं, तुम रोटी ले जाया करो!"

"भूख नहीं लगती।"

"अच्छा, कल ज़रूर आना, भूलना मत!"

इतने में एक दूसरा लड़का साईं का गूदड़ खींचकर भागा। गूदड़ लेने के लिए साईं उस लड़के के पीछे दौड़ा। मोहन खड़ा देखता रहा, साईं आँखों से ओझल हो गया।

चौराहे तक दौड़ते-दौड़ते साईं को ठोकर लगी, वह गिर पड़ा, सिर से खून बहने लगा। खिझाने के लिए जो लड़का गूदड़ लेकर भागा था, वह डर से ठिठक रहा था। दूसरी ओर से मोहन के पिता ने उसे पकड़ लिया, दूसरे हाथ से साईं को पकड़कर उठाया। नटखट लड़के के सिर पर चपत पड़ने लगी। साईं उठकर खड़ा हो गया।

"मत मारो, मत मारो, चोट आती होगी।"—साईं ने कहा।

"तब चिथड़े के लिए दौड़ते क्यों थे?"

सिर फटने पर भी जिसको रुलाई नहीं आयी थी, वही साईं लड़के को रोते देखकर रोने लगा। उसने कहा—"बाबू,

मेरे पास दूसरी कौन-सी वस्तु है, जिसे देकर इन रामरूप भगवान को प्रसन्न करता ?"

"तो क्या तुम इसीलिए गूदड़ रखते हो ?"

"इस चिथड़े को लेकर भागते हैं भगवान, और मैं उनसे लड़कर छीन लेता हूँ ; रखता हूँ फिर उन्हींसे छिनवाने के लिए, उन्हींके मनोविनोद के लिए। सोने का खिलौना तो उचक्के भी छीनते हैं, पर चिथड़ों पर भगवान ही दया करते हैं !" इतना कहकर बालक का मुँह पोंछता हुआ मित्र के समान गलबाँही डाले हुए साईं चला गया।

मोहन के पिता आश्चर्य से बोले—"गूदड़ साईं ! तुम निरे गूदड़ नहीं, गुदड़ी के लाल हो !"

3. प्रायश्चित्त

श्री भगवतीचरण वर्मा

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसीसे प्रेम करती थी, तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर-भर में किसीसे घृणा करती थी, तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आयी थी; पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार-घर की चाबी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ; सासजी ने माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार-घर खुला है, तो कभी भंडार-घर में बैठे-बैठे सो गयी। कबरी बिल्ली को मौक़ा मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गयी। रामू की बहू की जान आफ़त में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गयी और बचा हुआ घी कबरी के पेट में! रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गयी और दूध नदारद। अगर बात यहाँ तक रह जाती, तो भी बुरा न था। कबरी रामू की बहू को कुछ ऐसा परख गयी थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब तक आये, तब तक कटोरी साफ़ चटी हुई। बाज़ार से बालाई आयी

और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, बालाई ग़ायब ; रामू की बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी की गयी और दोनों सतर्क ! बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, उसमें दूध, बालाई, चूहे और भी बिल्ली को स्वादिष्ठ लगनेवाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये; लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखायी। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी ; पर अब वह साथ लगी गयी ; लेकिन इतने फ़ासिले पर कि रामू की बहू उसपर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिडकियाँ और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनायी। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औंटे गये, सोने का बर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक़ पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके ! रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गयी।

उधर कमरे में बिल्ली आयी, ताक़ के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा—माल, अच्छा है ताक़ की ऊँचाई अंदाज़ी ; देखा रामू को बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गयी और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज़ के साथ फ़र्श पर !

आवाज़ रामू की बहू के कानों में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी। क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फ़र्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चंपत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद न आयी, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाए कि फिर ज़िंदा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद वह मुस्कुराती हुई उठी। कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गयी। रामू की बहू एक कटोरी दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गयी। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी, तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौक़ा हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लायी, बस, एकदम उलट गयी।

आवाज़ जो हुई, तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटना-स्थल पर उपस्थित हो गयीं। रामू की बहू सर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—"अरे राम, बिल्ली तो मर गयी! माँजी, बिल्ली की हत्या बहू से हो गयी, यह तो बुरा हुआ!"

मिसरानी बोली—"माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर हैं। हम तो रसोई न बनाएँगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।"

सासजी बोली—"हाँ, ठीक तो कहती हो, अब, जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाए, तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। यह क्या कर डाला?"

महरी ने कहा—"फिर क्या हो, कहो तो पंडितजी को बुला लाऊँ?"

सास की जान में जान आयी—"अरे हाँ, जल्दी दौड़के पंडितजी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की ख़बर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गयी। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ़ से प्रश्नों की बौछार हुई और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी रही।

पंडित परमसुख को जब ख़बर मिली, उस समय वे पूजा कर रहे थे। ख़बर पाते ही वे उठ पड़े। पंडिताइन से मुस्कुराते हुए बोले—"भोजन न बनाना। लाल घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली। प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पंडित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे आदमी थे। लंबाई चार फुट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, मूँछें बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँची हुई। कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराकवाले पंडितों

को ढूंढ़ा जाता था, तो पंडित परमसुख को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पंडित परमसुख पहुँचे और कोरम पूरा हुआ। पंचायत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पंडित परमसुख। बाक़ी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ ने कहा—"पंडितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन-सा नरक मिलता है?"

पंडित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—"बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह मुहूरत (मुहूर्त) भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई, तभी नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह"—मिसरानी ने कहा।

पंडित परमसुख ने पत्रा के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलायीं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुंधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गंभीर हो गया—"हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ; प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में बिल्ली की हत्या! घोर कुंभीपाक नरक का विधान है। रामू की माँ, यह तो बुरा हुआ।"

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गये—"तो फिर पंडितजी, अब क्या होगा आप ही बतलाएँ।"

पंडित परमसुख मुस्कुराये—"रामू की माँ, चिंता व कौन-सी बात है? हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं?

शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है, सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

रामू की माँ ने कहा—"पंडितजी, इसलिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाए।"

"किया क्या जाए? यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाए। जब तक बिल्ली न दे दी जाएगी, तब तक तो घर अपवित्र रहेगा; बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाए।"

छन्नू की दादी—"और क्या? पंडितजी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाए और पाठ फिर हो जाए।"

रामू की माँ ने कहा—"तो पंडितजी, कितने तोले की बिल्ली बनायी जाए?"

पंडित परमसुख मुस्कुराये। अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"बिल्ली कितने तोले की बनवायी जाए? अरे, रामू की माँ, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वज़न-भर सोने की बिल्ली बनवायी जाए। लेकिन अब कलियुग आ गया है, कर्म-धर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। तो रामू की माँ बिल्ली के तौल-भर की बिल्ली तो क्या बनेगी? क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम क्या होगी? हाँ, कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवाके दान करवा दो और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा।"

रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पंडित परमसुख को देखा—

"अरे बाप रे! इक्कीस तोला सोना! पंडितजी, यह तो बहुत है, तोले-भर की बिल्ली से काम न निकलेगा?"

पंडित परमसुख हँस पड़े—"रामू की माँ! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे, रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर बड़ा पाप है, इसमें इतना लोभ ठीक नहीं!"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आयी।

पंडित परमसुख ने कहा—"उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं? रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।"

"पूजा का सामान कितना लगेगा?"

"अरे, कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए क़रीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ, पाँच मन चना, चार पंसेरी घी और मन-भर नमक भी लगेगा। बस, इतने से काम चल जाएगा।"

"अरे बाप रे! इतना सामान! पंडितजी, इसमें तो सौ-डेढ़-सौ रुपया ख़र्च हो जाएगा!"—रामू की माँ ने रुआ-सी होकर कहा।

"फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ? ख़र्च को देखते वक़्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो! यह प्रायश्चित्त है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है; और जैसी जिसकी मरजादा, प्रायश्चित्त में

उसे वैसा ख़र्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं! अरे, सौ-डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।"

पंडित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए। किसनू की माँ ने कहा—"पंडितजी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं। बड़े पाप के लिए बड़ा ख़र्च भी चाहिए।"

छन्नू की दादी ने कहा—"और नहीं तो क्या? दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं। दान-पुन्न में किफ़ायत ठीक नहीं।"

मिसरानी ने कहा—"और फिर, माँजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना ख़र्च कौन आप लोगों को अखरेगा?"

रामू की माँ ने अपने चारों और देखा—सभी पंच पंडितजी के साथ। पंडित परमसुख मुस्कुरा रहे थे। उन्होंने कहा—"रामू की माँ, एक तरफ़ तो बहू के लिए कुंभीपाक नरक है और दूसरी तरफ़ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा ख़र्चा है। सो उससे मुँह न मोड़ो।"

एक ठंडी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा—"अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।"

पंडित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़कर बोले—"रामू की माँ! यह तो खुशी की बात है; अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो, मैं चला।" इतना कहकर पंडितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे, पंडितजी! रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता।

बेचारी को कितना दुख है! बिगड़ो नहीं।"—मिसरानी छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पंडित के पैर पकड़े और पंडितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

"और क्या हो?"

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।"—कुछ रुककर पंडित परमसुख ने कहा—"सो इसकी चिंता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूंगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मणों के भोजन का फल मिल जाएगा।"

"यह तो पंडितजी ठीक कहते हैं; पंडितजी की तोंद तो देखो!"—मिसरानी ने मुस्कुराते हुए पंडितजी पर व्यंग्य किया।

"अच्छा, तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबंध करवाओ, रामू की माँ। ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ। दो घंटे में मैं बनवाकर लौटूंगा। तब तक पूजा का प्रबंध कर रखो। और देखो पूजा के लिए....."

पंडितजी की बात ख़तम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आयी और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबड़ाकर पूछा—"अरी, क्या हुआ री?"

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—"माँ जी, बिल्ली तो उठकर भाग गयी!"

4. पट्टी

मिर्ज़ा अज़ीमबेग़ चग़ताई

पट्टियाँ एक तो वे होती हैं, जो चारपाइयों में लगायी जाती हैं, दूसरी वे जो सिपाहियों के पैरों पर बाँधी जाती हैं। फिर और भी बहुत क़िस्म की पट्टियाँ हैं। लेकिन मेरा मतलब यहाँ उस पट्टी से है, जो फोड़ा-फुंसी और चोट-चपेट के सिलसिले में डाक्टरों के यहाँ बाँधी जाती है।

मेरी स्त्री की मिलनेवालियों में एक लेडी-डाक्टर थीं, मिस ओरमा लिंडसे। मैं ससुराल जानेवाला था। मिस ओरमा ने मुझसे कह दिया था कि जिस रोज़ तुम ससुराल जाओ, मुझसे ज़रूर मिल लेना; इसलिए मैं सुबह तड़के ही मिस साहबा के बँगले पर पहुँचा।

यह बतलाने के पहले कि बँगले पर क्या हुआ, दो एक बातें मैं कुत्तों के बारे में कहना चाहता हूँ। वह छोटे-छोटे कुत्ते जो खूबसूरत कहे जाते हैं और बँगलों में अदबदाके पाले जाते हैं, चाहे कटखने न हों, मगर इधर आप बँगले में दाख़िल हुए और उधर वे सीधे आपके ऊपर!—ज़ाहिरा तौर पर काट खाने के लिए, मगर वास्तव में आपको दौड़ाकर और रपटाकर चित करने की नीयत से निकले। अत: आप सच मानिये कि यही हुआ। मिस ओरमा के तीन छोटे-छोटे कुत्तों ने ऐसी बुरी तरह मेरे ऊपर हमला किया कि मेरे होश जाते रहे। गुलाब के एक काँटों-

भरे दरख़्त पर मैंने ऐसे पैर रख दिया, जैसे कोई रेशमी गद्दे पर रखता है ! वहाँ फँसकर बदहवासी के साथ गमले फाँदे। एक फाँद गया, दो फाँद गया, तीसरे में पैर ऐसा लगा कि मुँह के बल गिरा और साथ ही कुत्ते मेरे सिर पर ! जनाब, क्या बताऊँ किस तरह बेतहाशा फिर उठा कि कुत्तों ने ऐसी टाँग ली कि एक कुत्ते पर पैर पड़ गया और अब की सड़क पर जा गिरा। वहाँ से घबराकर सीधा उठकर बरामदे में आया। कुत्ते पीछे-पीछे थे। चिक उठाने की मोहलत किसे थी ! चिक समेत, तोप के गोले की तरह कमरे में दाख़िल ! उधर से मिस साहबा बदहवास चीखती आ रही थीं। मैं इस बुरी तरह मिस साहबा से जाकर टकराया कि वे कुरसी पर चीख़ मारकर गिरीं। मैंने सहारा देकर जल्दी से उठाया। कुत्ते खड़े अब दुम हिला रहे थे—वह मूजी, जो पल-भर पहले मेरी जान लेने को तैयार थे !

(२)

जब होश ज़रा दुरुस्त हुए, तो हम दोनों ने बातें करनी शुरू कीं। मिस साहबा ने अपनी सहेली से मिलने का आग्रह प्रकट किया। कुछ इधर-उधर की बातें कीं। इतने में साहबा की निगाह मेरे हाथ पर पड़ गयी, जो सड़क पर गिरने से रगड़ खाकर अंगूठे की जड़ के पास से छिल गया था।

"ओह....यह....यह क्या ?" यह कहकर उन्होंने मेरे नाम-मात्र के ज़ख्म की परीक्षा की और कहा—"मैं अभी इसे लोशन से धोकर ड्रेस किये देती हूँ।"

मैंने कहा—"अजी, रहने दीजिये, कोई बात भी हो।"

मिस साहबा परेशान सूरत बनाकर बोलीं—"मिर्ज़ा साहब, यह मामूली बात नहीं, इसको फ़ौरन ड्रेस करना चाहिए; वरना कहीं....."

"वरना कहीं....?" मैंने पूछा।

मिस ओरमा ने भौंहें चढ़ाकर और भयभीत-सी शक़्ल बनाकर कहा—"टिटेनस!"

'टिटेनस' यह मेरे लिए बिलकुल नया शब्द था। यकायक ख़्याल गुज़रा कि वह कहीं शेक्सपियर की नायिका टिटानिया का भाई-बन्धु तो नहीं है। ख़ैर, मैंने तफ़सील पूछी, तो मालूम हुआ कि यह ज़हरबाद की क़िस्म का रोग है। (टिटेनस का वैद्यक नाम धनुपटंकार है।) सड़क की मामूली रगड़ से संभव है कि ख़राश में कुछ सूजन हो जाए, रात ही रात में हाथ सूजकर डबल बन जाए और सुबह होते-होते ज़हरबाद शुरू हो जाए, और फिर....राम, राम!

मैं कुछ सहम-सा गया। इस भयंकर रोग की दिल दहलानेवाली बातें सुनता जाता था और मिस ओरमा की नाज़ुक उँगलियों से पट्टी बँधवाता जाता था। बँगले से जो निकला, तो हुलिया यह था कि गले में एक झूला पड़ा हुआ था और उसमें जकड़बंद किया हुआ हाथ। ख़ैरियत यह थी कि तांगे पर आया था। अगर साइकिल पर होता, तो और भी मुसीबत होती।

(३)

रास्ते में एक जान-पहचानवाले मिले। दुआ-सलाम के साथ ही उन्होंने ताँगा रुकवाया। "अरे मियाँ, यह क्या? ख़ैर तो है?" उन्होंने कहा। मैंने इसके उत्तर में पूरा क़िस्सा सुनाया कि जनाब, सड़क पर रगड़ लग गयी। और इस डर के कारण टिटेनस हो जाए, यह कार्रवाई की है। "लाहौल बिला कूवत!" उन्होंने ज़ोर से क़हक़हा लगाया और टिटेनस तथा उसकी कल्पना पर लानत भेजते हुए कहा—"पट्टी खोलके फेंक दो और इसकी जगह सिन्दूर और तेल रगड़कर लगा दो।"

इसके बाद एक साहब और मिले। उन्होंने भी ताँगा रुकवाया। वही बातचीत हुई। उन्होंने भी टिटेनस पर लानत भेजी। खूब हँसे, मज़ाक उड़ाया और कहने लगे—"टूटे हुए घड़े की गिट्टी रगड़कर नीम की छाल के साथ लगा दो।"

संक्षेप में यह कि रास्ते पर चार आदमी और मिले। सभी ने टिटेनस पर लानत भेजी और मुझपर हँसे। किसीने काली मिर्च बतायीं, किसीने चंदन बताया, किसीने कहा—कुछ न बाँधो, यों ही सूख जाएगा।

घर पहुँचा तो पिताजी ने पट्टी का हाल पूछा, माँ ने पूछा, भाई-बहनों ने पूछा। ग़रज़, सबको हाल बताना पड़ा। फिर नौकरों की बारी आयी। घर की बूढ़ी नौकरानी ने सहानुभूति से सुने-सुनाये का ब्यौरा पूछा—"बेटा, यह 'टिनटस' क्या है जो तुम्हारे दुश्मनों को होने का डर है?" बूढ़ी ने जब लड़कों से

सुना था, तो शायद टिटेनस को तरकारी की क़िस्म की कोई चीज़ समझी थी। ख़ैर, जिस तरह हो सका, उनको भी समझाया। इतने में बाहर एक मिलनेवाले आ गये। उनसे किसीने सुनी-सुनायी उड़ा दी। बहुत परेशान और सहानुभूतिपूर्ण स्वर में उन्होंने सारा ब्यौरा पूछा, जो बताना पड़ा। वे चले गये तो ख़रबूज़ेवाला आया। रोज़ आता था। भला, कैसे बिना पूछे रह जाता? मैंने कहकर टालना चाहा कि चोट लग गयी है, इतने में नौकर का लड़का बोल उठा 'टीटंस' हो गया। इधर मैंने लड़के की तरफ़ घूरकर देखा, उधर ख़रबूज़ेवाला चकराकर बोला—"मियाँ, यह 'टीटंस' क्या है? क्या कोई पुड़िया का नाम डाक्टरों ने रखा है?"

मैंने जलकर कहा—"बेहूदा मत बको।"

इससे फुरसत पायी थी और अंदर गया तो देखा कि माताजी दो-चार औरतों को टिटेनस पर लेक्चर दे रही हैं। मैं पहुँचा तो मुझसे भी प्रार्थना की गयी कि मैं इस टिटेनस पर कुछ और रोशनी डालूँ। अब मैं तंग आ गया था। टिटेनस के नाम से गुस्सा आता था। ख़ैर, ज्यों-त्यों करके बला टली।

(4)

शाम को चार बजे की गाड़ी से रवाना होनेवाला था। इसी बीच में लोगों ने मेरा नातिक़ा बंद कर दिया। अब मैं सिर्फ़ यह कहकर टालना चाहता था कि चोट लग गयी है; मगर जनाब, पूछनेवाला बिना टिटेनस की बातचीत के, भला काहे को मानता! वह फ़ौरन कहता कि फलाँ साहब से सुना कि टिटेनस

होने का डर है। मजबूरन, जिस तरह बन पड़ता जान छुड़ाता।

ताँगा आया। असबाब लादा, तो ताँगेवाले ने भी पूछा—"मियाँ, हाथ में पट्टी कैसी?" मैं घुन्नाकर रह गया। स्टेशन पर अलबत्ता मेरी नाक में दम आ गया। बहुतों को यह कहकर टाला कि चोट लग गयी है। बहुतों को कुछ न कुछ टिटेनस का हाल बताना पड़ा। गाड़ी छूटने से पहले ही एक सज्जन से इस विषय पर बुरी मनौअल भी हो गयी।

"अरे मियाँ, यह हाथ में पट्टी कैसी?" उन्होंने पूछा।

"मामूली चोट लग गयी।"

"कैसे लग गयी?"

"सड़क पर गिर पड़ा था, ख़राश आ गया।"

"फिर कोई बात नहीं?"

"कोई बात नहीं।"

"मगर अब्दुल हमीद साहब मिले थे, वे कहते थे कि खुदा न करे, टिटेनस हो जाने का डर है। यह टिटेनस क्या होता है?"

अब मुझे ऐसा गुस्सा आया कि उनका मुँह नोच लूँ; क्योंकि वे केवल मुझे तंग कर रहे थे। आप ही विचार कीजिये कि पहले तो उन्होंने शुरू से पूरी तफ़सील पूछी, यद्यपि वे अब्दुल हमीद साहब का अच्छी तरह मग़ज़ खा चुके थे, और फिर टिटेनस को पूछते हैं कि क्या होता है, जो कि खूब अच्छी तरह पूछ चुके थे।

मैंने जलकर कहा—"टिटेनस एक तरह का बुख़ार होता है, जिसमें छींकें आती हैं।"

"हैं!" वे बोले—"अब्दुल हमीद साहब तो कहते थे कि ज़हरबाद होता है।"

"माफ़ कीजिये," मैंने कहा, "तो फिर आप जब जानते हैं कि टिटेनस क्या बला है, तो मेरा दिमाग़ चाटने से फ़ायदा?"

प्रत्यक्ष है कि ऐसा बातचीत का फल क्या हो सकता है। वे बुरा माने और मैं भी बुरा माना, जिससे वे और भी बुरा माने।

(5)

मेरे डब्बे में वैसे तो कई आदमी थे, मगर बिलकुल पास ही बैठनेवाले एक तो ज़मींदारी सूरत, लखनऊ की तरफ़ के मुसलमान थे और एक साहब कुछ फ़ौजीनुमा मालूम होते थे। ख़ाकी कमीज़ और नेकर पहने थे। इनके पास ही एक मेरे शहर के मारवाड़ी महाजन बैठे थे। इनके अलावा दो-एक और सज्जन भी थे। गाड़ी चली। दो-एक इधर-उधर ज़बरदस्ती की बातें पूछकर इन फ़ौजी सज्जन ने आख़िर पूछ ही तो लिया—"आपके हाथ में यह पट्टी कैसी बँधी है?"

मैं कह नहीं सकता कि मैं दिल में कितना घुन्नाया। मजबूरन कह दिया—"ज़ख़्म हो गया है।"

"कैसे?"—उन्होंने पूछा।

मारे गुस्से के मैंने कहा—"बात दरअसल यह है कि मगर ने काट खाया है।"

"मगर ने !.....मगर ने काट खाया ?"

"जी हाँ ।"—मैंने लापरवाही से कहा ।

"कैसे ?"—उन्होंने बड़ी उत्सुकता से अब ब्योरा पूछना चाहा कि मैं किस तरह पानी या दलदल में घुसा, मगर से मेरा कैसे साबक़ा पड़ा आदि । मगर मैंने तंग आकर दूसरी तरकीब सोची ।

"मुँह से काट खाया ।"—मैंने कहा ।

"जी हाँ"—उन्होंने सिर को हिलाते हुए कहा—"मुँह से तो काटा ही होगा ; मगर कहाँ पर आख़िर....."

जहाँ चोट लगी थी और पट्टी बंधी थी, मैंने दूसरे हाथ से वह स्थान पकड़कर कहा—"यहाँ पर काट खाया और मुँह बाकर काट खाया ।" मैंने मुँह से हाथ दबाने की नक़ल करते हुए कहा ।

"नहीं साहब,"—वह दूसरे ज़मींदार साहब बोले—"इनका मतलब यह है कि आख़िर वह कौन मुक़ाम था, जहाँ मगर ने काट खाया ; क्या घटना हुई थी ।"

मैंने उसी तरह रूखे मुँह से कहा—"मैंने कहा न कि इसी मुक़ाम पर, हथेली के पास ।" मैंने फिर दुबारा उस जगह को पकड़कर दिखाया—"इसी मुक़ाम पर मूज़ी ने काट खाया । और कोई घटना तो हुई नहीं ।"

कुछ चिड़चिड़ाकर उन्होंने कहा—"अजी हज़रत, क़िस्सा सुनाइये कि किस तरह, कौन-सी नदी या तालाब में, क्या मामला पेश आया, जो मगर ने आपकी हथेली को काट खाया ।"

"अब मैं समझा आपका क्या मतलब है।"—मैंने कहा, "सुनिये, घटना वास्तव में यह हुई कि हमारे पड़ोस में एक नदी है। वहाँ एक बड़ा-सा मगर रहता था। एक रोज़ मैंने एक बड़ा ज़बरदस्त मछली का काँटा कोई दस सेर वज़न का बनवाया। उसे एक मोटे तार के रस्से में बाँधकर पेड़ से बाँध दिया। काँटे में गोश्त लगाकर नदी में डाल दिया। उसमें मगर रात के आठ बजकर तीन मिनट पर फँस गया।"

इस संक्षिप्त वृत्तांत को भला, लोग काहे को पसंद करते? चारों ओर से सवालों की झड़ी बँध गयी।

किसीने पूछा, साहब, काँटा कैसी नोक का था? किसीने पूछा, क्या वह निगल गया? ग़रज़ यह कि तरह-तरह के सवाल पैदा हो गये। मजबूरन मुझे मगर के शिकार के कुछ और क़िस्से गढ़कर सुनाने पड़े। अब मैंने अपने बयान की कहानी का रूप देकर सुनाना शुरू किया और उस स्थान पर पहुँचा कि दस-बारह आदमियों ने रस्सा खींचा, मगर ने ज़ोर से तड़पकर पलटा खाया ही था कि दूसरा स्टेशन आ गया।

स्टेशन आने से भला, मेरी कहानी क्या रुकती? लेकिन यहाँ मुसीबत आयी कि एक सज्जन ने छकड़ा-भर असबाब के साथ इसी डब्बे पर हमला किया। इस धमाधमी के साथ उन्होंने और उनके नौकरों ने असबाब की फेंकाफेंक और ठूँसाठूँस की कि सबको अपने-अपने बोरिये-बिस्तरे और जगह की पड़ गयी। ये हज़रत शायद पुलिस के सब-इंस्पेक्टर थे और किसी दूसरे थाने पर तबादिले के सिलसिले में लद रहे थे। हट्टे-

कट्टे जवान थे और उनकी मूँछें बड़ी-बड़ी थीं। सामने ही दूसरों की जगह पर कब्ज़ा करके इधर-उधर सरकाकर बैठ गये और फ़ौरन ही मुझे पान पेश किया। मेरी कमबख़्ती थी कि मैंने धन्यवाद के साथ ले लिया। इसके साथ ही फ़ौरन मौसम की शिकायत की। मैं क्या जानता था कि अब यह मुझे छेड़ेंगे? हुआ भी ऐसा ही। मौसम की शिकायत के बाद ही उन्होंने भी आख़िर को गोला दे मारा।

"क्यों जनाब, यह आपके हाथ में पट्टी कैसी है?"

सूखे मुँह से मैंने कहा—"परसों काले साँप ने काट खाया।"

"अरे! काला साँप?"

मैंने कहा—"जी, काला।" यह कहकर मैंने इधर-उधर के उन लोगों पर नज़र डाली, जिनको मैं मग़र की कहानी सुना रहा था, और जो शायद अब बाक़ी कहानी को पूरा करने की फ़रमाइश करने ही वाले थे। किसीके चेहरे पर गंभीरता थी, तो किसीके चेहरे पर मुस्कुराहट।

"कहाँ? कैसे? कहाँ काट खाया? कैसे काट खाया? कब?"

"मैंने कहा तो था कि परसों काट खाया।"

"कहाँ? आप क्या कर रहे थे?"

"यहाँ।" मैंने पट्टी पर हाथ से बताते हुए कहा—"यहीं काट खाया। मैं खाना खा रहा था।"

"तो फिर क्या हुआ?"

"फिर साँप ने काट खाया।" मैंने सादगी से कहा।

"कैसे ?"

"ऐसे,"—मैंने उँगली से चुटकी लेकर साँप के काटने की नक़ल बनाते हुए कहा—"ऐसे काट खाया।"

"अजी साहब, यह मतलब नहीं, आख़िर क्या हुआ था ? साँप कैसे आया और वाक़या पूरा-पूरा क्या है ?"

इसके बाद मैंने अपने साँप काटने का क़िस्सा बयान करना शुरू किया, जो बदक़िस्मती से मुझे याद नहीं ; मगर यह अच्छी तरह याद है कि मैंने अपना क़िस्सा बहुत अच्छी तरह से पूरा किया था।

जो लोग मगर का क़िस्सा सुन चुके थे, उनके सवालों का मैंने निहायत सादगी से जवाब दिया। मैंने कहा—"मगर भला, किस तरह काट सकता है? मुझे मगर ने कभी नहीं काटा।" मेरी गंभीरता पर पहले तो वे कुछ मुस्कुराये, फिर उनके चेहरों से कुछ संशय प्रकट हुआ ; मगर मैं प्रत्यक्ष रूप से बहुत गंभीर था। मेरे दिल को आराम पहुँच रहा था। दिन-भर के सही उत्तरों से मन में जो जलन पैदा हो गयी थी, वह मिट गयी। पहले की बनिस्बत अब मैं खुश था। अब मैं निस्पृह भाव से अख़बार पढ़ने में व्यस्त हो गया।

कई स्टेशन निकल गये। कोई नया आगंतुक ऐसा न आया, जो मेरी पट्टी का हाल पूछता। किसीने ठीक ही कहा है कि 'कभी नाव गाड़ी पर, कभी गाड़ी नाव पर।' अब मेरा नंबर था। मैं इस प्रतीक्षा में था कि कोई मुझसे पूछे तो ; मगर

किसीने न पूछा। यहाँ तक कि मैं घर यानी ससुराल पहुँच गया।

(8)

रात के साढ़े ग्यारह बजे होंगे। सास साहबा के सामने जाकर अदब से फ़र्श पर बैठ गया। सलाम-दुआ के बाद पहला सवाल उन्होंने जो किया, वह था—"ख़ैर तो है? तुम्हारे हाथ में पट्टी कैसे बँधी है?"

"गोली लग गयी है।"—मैंने जलकर कहा।

"या अली गोली!"—वे चौंककर बोलीं, "खुदा ख़ैर करे, गोली कैसे लग गयी?"

"बंदूक़ की नाल से।"—मैंने कहा।

"बेटा, अख़िर क्या हुआ था, कैसे बंदूक़ चल गयी?"

क्या बताऊँ कि मुझे इस सवाल से अब कैसी जलन हो रही थी! अब मालूम हुआ कि किसीने ठीक ही कहा—

'नहीं दौड़ता है घोड़ा हर एक जगह पर।'

मुझे जलन हो रही थी; क्योंकि छतवाले कमरे पर बिजली की रोशनी ग़ायब थी, जिसका अर्थ यह था कि कमरे-वाली शायद नहीं, बल्कि निश्चित रूप से अनुपस्थित थी। इसलिए जवाब देने के बजाय मैं मन में सोचने लगा कि अपने मामा के यहाँ गयी होगी। मेरे एक मूर्ख मित्र ने सलाह दी कि बिना पहले से ख़बर दिये सहसा ससुराल पहुँचना और वहाँ श्रीमती से मिलना विशेष आनन्ददायक होता है। जवाब देने के बजाय मैं मन ही मन उन्हें मूर्ख कह रहा था कि यकायक

चौंक-सा पड़ा। एक सूखा संक्षिप्त-सा क़िस्सा सुनाया कि बंदूक अचानक चल गयी और गोली छूती हुई निकल गयी ; मगर सास साहबा ने मेरी जान खाना शुरू किया।

इसी बीच में छोटी साली साहबा लजाती, बल खाती, इठलाती आयीं। मैं बयान नहीं कर सकता कि उस समय मैं कैसी उलझन में था। सास साहबा दुनिया-भर की बातें तो कर रही थीं, मगर यह न बताती थीं कि मेरी श्रीमती हैं कहाँ, अपने मामा के यहाँ या घर में। ख़ैर, बातचीत में छोटी साली से इतना तो मालूम हुआ कि घर में नहीं हैं। सास साहबा बोलीं, "……दोनों गयी थीं। यह तो शाम ही को लौट आयी और उसने खाना खाकर आने को कहा था, मगर रह गयी। बहन ने पकड़ लिया होगा। दोनों में बड़ी मुहब्बत है, अक्सर बुला भेजती है।"

यहाँ कहकर सास ने मेरी श्रीमती की ममेरी बहन की मुहब्बत का कानों में चुभनेवाला क़िस्सा शुरू किया और इधर-उधर मैंने मुँह बनाया और लापरवाही से जम्हाइयाँ लेनी शुरू की, क्योंकि मुझे अपने श्रीमती से इस तरह की मुहब्बत करनेवालियों से सख़्त नफ़रत है। ख़ैर, शुक्र है कि सासजी मेरा मतलब समझ गयीं और कहने लगीं—"अच्छा, अब जाओ, सो रहो।"

मैं थके हुए पैरों से अन्धेरे में अनमने भाव से ज़ीने पर चढ़ा। छत पर पहुँचते ही बत्ती जलायी। नौकरानी कमबख़्त ने मेरा बिस्तर ज्यों का त्यों पलंग पर रख दिया था! मैंने खोलकर बिछाया, बत्ती बुझायी और लेटकर बहुत जल्द सो गया।

रात का आख़िरी हिस्सा और गर्मियों की ठण्डी हवा में मतवाली नींद! लेकिन कुछ आहट, कुछ गर्मी और खुशबू इस नींद को भी ग़ायब कर सकती है। मैं बिजली की रोशनी में हड़बड़ाकर उठा। "कौन?"—मेरे मुँह से निकला। जवाब देनेवाली मुस्कुरा रही थी मेरी मौजूदगी पर। ग़लती मेरी ही थी। कमरे के दूसरे बाजू के सामने ही तो चारपाई पड़ी थी। मैंने देखी न थी।

न दुआ, न सलाम, सीधे—"यह हाथ में आपके क्या हुआ, पट्टी कैसी बँधी है?"

या खुदा! भला, क्या जवाब देता? मैंने कहा—

"नज़र से तीर चलाकर किया घायल,
सवाल फिर यह कि हुआ क्या है!"

और उसी वक़्त तय कर लिया कि अब पट्टी न बाँधूंगा। खुदा इस इरादे की शर्म रखें!

5. अपना-अपना भाग्य

श्री जैनेंद्रकुमार

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर, हम सड़क के किनारे की बेंच पर बैठ गये।

नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रूई के रेशे-से, भाप-से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अंधियारी से रंग कर कभी वे पीले दीखते, कभी सफ़ेद और फिर ज़रा देर में अरुण पड़ जाते, जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

हमारे पीछे पोलोवाला मैदान फैला था। सामने अंग्रेज़ी का एक प्रमोद-गृह था, जहाँ सुहावना, रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियाँ अपने सफ़ेद पाल उड़ाती हुई, एक-दो अंग्रेज़ यात्रियों को लेकर, इधर से उधर खेल रही थीं और कहीं कुछ अंग्रेज एक-एक देवी प्रतिस्थापित कर, अपनी सुई-सी शक़ल की डोंगियों को मानों शर्त बाँधकर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी पानी में डाले धैर्य के साथ एकाग्र होकर मछली-चिंतन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लॉन में बच्चे किलकारियाँ भरते हुए हॉकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली-गलौज भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना वे

बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगाकर मानों ख़तम कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिंता न थी, बीते का ख़्याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की संपूर्ण सच्चाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरत प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था, न छोर। वह प्रवाह कहाँ जा रहा था, कौन बता सकता है? सब उमर के, सब तरह के लोग थे। मानों मनुष्यता के नमूना के बाज़ार सजकर सामने से इठलाता निकला चला जा रहा हो।

अधिकार-वर्ग में तने अंग्रेज़ उसमें थे और चिथड़ों से सजे घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया था और बड़ी तपस्या से दुम हिलाना सीख गये थे।

भागते-खेलते, हँसते, शरारत करते लाल-लाल अंग्रेज़ बच्चे थे और पीली आँखें फाड़े, पिता की उँगली पकड़कर चलते हुए अपने हिन्दुस्तानी नौनिहाल भी थे।

अंग्रेज़ पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हँस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव थे, जो बुज़ुर्गों को अपने चारों तरफ़ लपेटे, धन-संपन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अंग्रेज़ रमणियाँ थीं, जो धीरे नहीं चल सकती थीं, तेज़ चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में लाज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़ों पर भी बैठ सकती

थीं और घोड़े के साथ ही साथ ज़रा जी होते ही किसी हिन्दुस्तानी पर भी कोड़े फटकार सकती थीं। वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निश्शंक, निरापद, इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर से चली जा रही थीं।

उधर हमारे भारत की कुल-लक्ष्मियाँ सड़क के बिलकुल किनारे-किनारे, दामन बचाती और सम्हालती साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमटकर लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गारिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर, सहमी-सहमी धरती में आँखें गाड़े क़दम-क़दम बढ़ रही थीं।

(2)

घंटे के घंटे सरक गये। अंधकार गाढ़ा हो गया। बादल सफ़ेद होकर जम गये। मनुष्यों का यह ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्के-दुक्के आदमी सर पर छतरी लगाकर निकल रहे थे। हम वहीं के वहीं बैठे थे। सरदी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिरकर देखा। वह लान बर्फ की चादर की तरह बिलकुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था।

सब ओर सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनी दीपमालिका-सी जगमगा रही थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिंबित हो रही थी। और दर्पण-सा, काँपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह ताल उन प्रतिबिंबों को सौ गुना करके, उनके प्रकाश को मानों एकत्र और जमा कर

व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशनी तारों-सी जान पड़ती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने परदे आकर इन सबको ढँक दिया। रोशनी मानों मर गयी। जगमगाहट लुप्त हो गयी। वह काले-काले भूत-से पहाड़ भी उस सफ़ेद के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दिखने लगी। मानों यह घनीभूत प्रलय था। सब-कुछ इस घनी, गहरी सफ़ेदी में दब गया, जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैलकर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया हो। ऊपर, नीचे, चारों तरफ़ वह निर्भेद्य सफ़ेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी न देखा था; टप-टप टपक रहा था। मार्ग अब बिलकुल निर्जन था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उसे बृहदाकार, शुभ्र शून्य में कहीं से ग्यारह बार टन-टन हो उठा जैसे कहीं दूर क़ब्र में आवाज़ आ रही हो। हम अपने-अपने होटलों के लिए चल दिये।

रास्ते में मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवरकोट तर हो गये। बारिश नहीं मालूम होती थी। सरदी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कंबल और होता, तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिलकुल किनारे एक बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुँचकर इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा, गरम बिस्तर में छिपकर सो रहना चाहता था। पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी और कब थमेगी, इसका क्या कुछ ठिकाना है? और वह कैसी क्या होगी, इसका भी कुछ अंदाज़ है? उन्होंने कहा—"आओ, ज़रा यहाँ बैठें।"

हम उस चूते कुहरे में रात के ठीक एक बजे, तालाब के किनारे की उस भीगी, बर्फ़ीली, ठंडी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

पाँच, दस, पन्द्रह मिनट हो गये। मित्र के उठने का इरादा मालूम न हुआ। मैंने झुँझलाकर कहा—"चलिये भी—"

"अरे, ज़रा बैठो भी—"

हाथ पकड़कर ज़रा बैठने के लिए जब ज़ोर से बैठा लिया गया, तो और चारा न रहा। सनक से छुटकारा पाना आसान न था; और यह ज़रा बैठना भी ज़रा न था।

चुपचाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले—"देखा वह क्या है?"

मैंने देखा, कुहरे की सफ़ेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली-सी मूर्ति हमारी तरफ़ बढ़ी आ रही थी। मैंने कहा—"होगा कोई।"

तीन गज़ दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का, सिर के बड़े-बड़े बाल खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर हैं, नंगा सिर, एक मैली-सी कमीज़ लटकाये है।

पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे थे और वह न जाने कहाँ जा रहा था, कहाँ जाना चाहता था! न दायाँ था, न बायाँ था।

पास की चुंगी की लालटेन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त में देखा, कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है; आँखें अच्छी, बड़ी, पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियाँ खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे को धरती, न ऊपर चारों तरफ़ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न एकांकी दुनिया। बस, वह अपने निकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज़ दी—"ऐ!"

उसने अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

"दुनिया सो गयी, तू ही क्यों घूम रहा है?"

बालक मौन-मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

"कहाँ सोएगा?"

"यहीं कहीं।"

"कल कहाँ सोया था?"

"दूकान पर।"

"आज वहाँ क्यों नहीं?"

"नौकरी से हटा दिया।"

"क्या नौकरी थी?"

"सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।"

"फिर नौकरी करेगा?"

"हाँ...."

"बाहर चलेगा?"

"हाँ।"

"आज क्या खाना खाया?"

"कुछ नहीं।"

"अब खाना मिलेगा?"

"नहीं मिलेगा।"

"यों ही सो जाएगा?"

"हाँ...."

"कहाँ"

"यहीं कहीं।"

"इन्हीं कपड़ों से?"

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानों बोलती थीं—यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न है।

"माँ-बाप हैं?"

"हैं।"

"कहाँ?"

"पंद्रह कोस दूर, गाँव में।"

"तू भाग आया?"

"हाँ।"

"क्यों?"

"मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं, सो भाग आया। वहाँ काम नहीं है, रोटी नहीं है। बाप भूखा रहता था और माँ भूखी रहती थी, रोती थी, सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का था, मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आये। वह अब नहीं है।"

"कहाँ गया?"

"मर गया।"

इस ज़रा-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान हो गयी! मुझे अचरज हुआ, पूछा—"मर गया?"

"हाँ, सांहब ने मारा, मर गया।"

"अच्छा, हमारे साथ चल।"

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील दोस्त के होटल में पहुँचे।

"वकील साहब!"

वकील साहब होटल के कमरे से उतरकर आये। काश्मीरी दोशाला लपेटे थे; मोज़े चढ़े पैरों में चप्पलें थीं। स्वर में हलकी झुंझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

"ओ-हो, फिर आप! कहिये?"

"आपको नौकर की ज़रूरत थी न? देखिये यह लड़का है।"

"कहाँ से लाये? इसे आप जानते हैं?"

"जानता हूँ यह बेईमान नहीं हो सकता।"

"अजी, ये पहाड़ी शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुण छिपे रहते हैं ; आप भी क्या अजीब हैं ! उठा लाये कहीं से—लो जी, यह नौकर लो !"

"मानिये तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।"

"आप भी....जी, बस, खूब हैं। ऐरे-ग़ैरे को नौकर बना लिया जाए और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चंपत हो जाए।"

"आप मानते ही नहीं, क्या करूँ ?"

"माने क्या ख़ाक ? आप भी जी....अच्छा मज़ाक करते हैं। अच्छा, अब हम सोने जाते हैं।"

और वह चार रुपये रोज़ के किरायेवाले कमरे में, सजी मसहरी पर, सोने झटपट चले गये।

(3)

वकील साहब के चले जाने पर होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला ; पर झट कुछ निराशा के भाव से हाथ बाहर कर, वे मेरी ओर देखने लगे।

"क्या है ?" मैंने पूछा।

"इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था,"—अंग्रेज़ी में मित्र ने कहा—"मगर दस-दस के नोट हैं।"

'नोट ही शायद मेरे पास भी हैं, देखूँ।"

सचमुच मेरी जेब में भी नोट ही थे। हम अंग्रेज़ी में बोलने लगे। लड़के के दाँत बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सरदी थी।

मित्र ने पूछा—"तब ?"

मैंने कहा—"दस का नोट ही दे दो।"

सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे—"अरे यार, बजट बिगड़ जाएगा। हृदय में जितनी दया है, पास उतने पैसे तो नहीं।"

"तो जाने दो ; यह दया ही इस ज़माने में बहुत है।"—मैंने कहा।

मित्र चुप रहे जैसे कुछ सोच रहे हों। फिर लड़के से बोले—"अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना। वह 'होटल-डि-पव' जानता है? वहीं कल दस बजे मिलेगा?"

"हाँ, कुछ काम देंगे हुज़ूर?"

"हाँ-हाँ, ढूंढ़ दूंगा।"

"तो जाऊँ?" लड़के ने निराशा से पूछा।

"हाँ।"

ठंडी साँस खींचकर फिर मित्र ने पूछा—"कहाँ सोएगा?"

"यहीं कहीं ; बेंच पर, पेड़ के नीचे, किसी दूकान की भट्ठी में।"

बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी, हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा, "भयानक शीत है। उसके पास कम, बहुत कम कपड़े...."

"यह संसार है यार!" मैंने स्वार्थ की फ़िलासफ़ी सुनायी—"चलो, पहले बिस्तर पर गरम हो लो, फिर किसी और की चिंता करना।"

उदास मित्र ने कहा—"स्वार्थ! जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो, या बेहयाई!"

दूसरे दिन नैनीताल-स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलार का वह बेटा बालक निश्चित समय पर हमारे 'होटल-डि-पव' में नहीं आया। हम अपनी नैनिताली सैर खुशी-खुशी ख़तम कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाये बैठे रहने की ज़रूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला—"पिछली रात एक पहाड़ी बालक सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया।"

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उमर और वही काले चिथड़ों की कमीज़ मिली। आदमियों की दुनिया ने बस, यही उपकार उसके पास छोड़ा था।

पर बतलानेवालों ने बताया कि ग़रीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बरफ़ की हलकी-सी चादर चिपक गयी थी, मानों दुनिया की बेहयाई ढँकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफ़ेद और ठंडे कफ़न का प्रबंध कर दिया था।

मैंने सब सुना और सोचा—"अपना-अपना भाग्य!"

P. Krishnamoorthy, B. A., Praveen.
ASSISTANT & AGENT,
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA,
TIRUPATI. [A. P]

6. गोरा

श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार

कह नहीं सकते एक सुखी जीवन की वास्तविक पहचान क्या है ; फिर भी इतना निश्चित है कि 'जीवन' एक सुखी किसान था। आर्थिक दृष्टि से वह बहुत ही दरिद्र था। गाँव की हद जहाँ जंगल से मिलती थी, उस स्थान की बीस-पचीस बीघा (एक एकड़ पौने दो बीघा बराबर) मामूली ढंग की ज़मीन पर उसका मौरूसी हक़ था। उसके परिवार में पत्नी के अतिरिक्त दो-तीन बच्चे भी थे। घर-गृहस्थी के लिए आवश्यक सामान का उसके पास अभाव नहीं था। मुरब्बा और परौठे न सही, नमकीन सत्तू ही सही, परिवार जिस किसी तरह दोनों जून अपने पेट के गढ़ों को भर अवश्य लेता था। पति-पत्नी में खूब निभती थी। दोनों ही शरीर से स्वस्थ और स्वभाव के मीठे थे। जीवन मेहनती आदमी था। उसे काम करने का शौक़ था, मानों वह इसके लिए बहाने ढूंढ़ता हो! रबी की फ़सल कट चुकने के बाद भी उसे किसीने सुस्ताते नहीं देखा। उन दिनों के लिए वह पहिले ही से अपनी ज़मीन के पाँच-सात कम उपजाऊ बीघों को घेर-घारकर तैयार कर रखता था। यहाँ ख़रबूज़े बोये जाते थे। जीवन-परिवार के वे दिन बड़े मज़े में कटते थे। ख़रबूज़े के खेत में जामुन की घनी छाया के नीचे फूस की एक ज़रा-सी झोंपड़ी, यही जीवन के ख़रबूज़ों का स्टोर-हाउस था

और यही उसके परिवार का आश्रय-स्थान। वैशाख मास के गरम दिनों की दुपहरी जामुन के इसी पेड़ की छाया में कटा करती थी। साँझ के बाद, दिन-भर बिकने से बचे हुए खरबूज़ों के साथ गेहूँ की रोटी खाकर, वे लोग ईश्वर को दुआएँ दिया करते थे। उन्हें न धनियों से द्वेष था और न ज़मींदार से ईर्ष्या।

वैशाख मास की किसी चाँदनी रात को, पास ही से एक हल्की-सी आवाज़ सुनकर जीवन की नींद उचट गयी। क़रीब आधी रात बीत गयी थी। जीवन को भय हुआ कि कहीं बाड़ा फाँदकर गीदड़ तो खेत में नहीं घुस आये, परंतु एक बार चाँदनी में अपने छोटे-से खेत को भली प्रकार देख लेने पर उसका यह संदेह दूर हो गया। इसी समय उसे फिर से वही आवाज़ सुनाई दी। यह आवाज़ सुनकर जीवन पहचान गया कि खेत के पासवाले जंगल में कोई जंगली जीव किसी गाय के बछड़े पर आक्रमण कर रहा है। अपने खेत में किसी प्रकार का उपद्रव न देखकर पहले तो जीवन की इच्छा हुई कि न जाऊँ, क्यों मुफ़्त में एक बछड़े के लिए अपनी जान ख़तरे में डालूं। परंतु बार-बार 'बाँ' 'बाँ' की करुण चिल्लाहट सुनकर वह रह न सका। जीवन खाट से उतरकर खड़ा हो गया। एक हाथ में मज़बूत डंडा और दूसरे हाथ में टूटी हुई चिमनीवाला बरसों का पुराना हरीकेन लैंप लेकर, वह उसी ओर चल दिया, जिस ओर से आवाज़ आ रही थी।

खेत की हद से मिलकर जो जंगल मीलों तक फैला हुआ था, उसका प्रांतर-भाग घना नहीं था। साधारण झाड़ियों और

ढाक के पेड़ों के अतिरिक्त कोई बड़ा वृक्ष वहाँ नहीं था। जंगल में प्रविष्ट होकर एक बड़े कुंड की ओट में उसने देखा कि एक छोटे-से बछड़े पर चार-पाँच गीदड़ आक्रमण कर रहे हैं और वह बेचारा ज़मीन पर लेटा हुआ बड़े करुण स्वर में 'बाँ' 'बाँ' कर रहा है। एक लैंप-हस्त आदमी को अपनी तरफ़ आता हुआ देखकर सब गीदड़ भाग खड़े हुए। जीवन ने पास जाकर देखा कि बछड़े को बहुत अधिक चोट नहीं आयी है, सिर्फ़ उसकी अगली दाईं टाँग और पीठ का कुछ भाग ही ज़ख़्मी हुआ है। जीवन ने अनुमान में पहचाना कि उसकी आयु दो मास से अधिक प्रतीत नहीं होती। बछड़े का रंग बिलकुल श्वेत था और उसके माथे पर लाल शंख का निशान बना हुआ था। जीवन बछड़े को धीरे-से गोद में उठाकर अपनी झोंपडी में चला आया।

प्रातःकाल उठकर जीवन ने जाँच करके देखा कि बछड़े की जात बहुत अच्छी है। अगर कुछ यत्न किया जाए, तो वह एक बहुत बढ़िया बैल बन सकता है। जीवन की घरवाली अभी सोयी ही हुई थी कि जीवन ने इस बछड़े को उसकी चारपाई पर डाल दिया। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। इस प्रकार अकस्मात् निद्राभंग हो जाने का कारण भी अभी तक पूरी तरह से नहीं समझ पायी थी कि उसने सुना, जीवन कह रहा था—"परमेश्वर ने पालने के लिए तुम्हें एक बच्चा दिया है।"

पति-पत्नी दोनों ने सम्मिलित रूप से खूब सोच-विचारकर इस मनुष्येतर जाति के बालक का नाम रखा—गोरा।

जीवन की क़िस्मत अच्छी थी। उसके प्रयत्न से गोरा के दोनों घाव शीघ्र ही भर गये। अच्छा होकर वह खूब कूदने-फाँदने लगा। कुछ ही महीनों में गोरा का डील-डौल खूब भर आया। उसके कंधे उन्नत और पुट्ठे मज़बूत हो गये।

(२)

देखते ही देखते गोरा एक बड़ा डील-डौलवाला बैल बन गया। उसके मुक़ाबिले का बैल आसपास के अनेक गाँवों में मिलना कठिन था। उसकी चाल हाथी की चाल के समान मस्तानी थी और उसकी गरज बादल की गरज के समान गंभीर। लोग उसे अब विस्मय के साथ देखते और जीवन के भाग्य की सराहना करते थे।

जीवन को गोरा पर अपने बच्चों के समान प्रेम था। प्रतिदिन दोनों समय मेहनत करके वह उसके लिए कुट्टी तैयार किया करता था। यथाशक्ति वह उसे कभी-कभी तेल और घी भी पिलाया करता था। जीवन की घरवाली को तो गोरा से एक तरह का मोह हो गया था। वह उसे हर समय आँखों के सामने रखना चाहती थी। उसके छोटे बच्चे उस विशालकाय बैल को चौड़ी छाती के नीचे खड़े होकर उसके गले की नरम और सुन्दर सास्ना को अपने चंचल हाथों से इधर-उधर हिलाया करते थे। गोरा आँखें बन्द करके बच्चों के इस अबोध प्यार का मज़ा लिया करता था। गोरा के डील-डौल का दूसरा बैल जीवन के पास तो क्या, गाँव-भर में नहीं था। इस कारण जीवन उसे हल में नहीं जोत सकता था। यही दलील देकर लोगों ने एक-एक

हज़ार रुपये तक दाम लगाकर गोरा को जीवन से ख़रीद लेना चाहा ; परंतु जीवन को यह मंजूर नहीं था। यह कहता था, "कभी धन के लालच से कोई अपनी संतान को भी बेचता है ?" जीवन के पास एक मामूली-सी बैलगाड़ी थी, वह गोरा को इसीमें जोता करता था।

जीवन के गाँव के नज़दीक ही एक बहुत बड़ा सरकारी मैदान था। लोगों में मशहूर था कि मुसलमानी हुक्म के दिनों में राह चलती हुई फ़ौजें इसी मैदान में पड़ाव किया करती थीं। आजकल यह मैदान एक ग्रामीण प्रदर्शिनी के काम में लाया जाता था। यहाँ शरद ऋतु में सरकार की ओर से पशुओं की एक बड़ी भारी नुमाइश की जाती थी। दूर-दूर के लोग इस नुमाइश में अपने जानवरों को लाते थे। जो जानवर सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते थे उन्हें सरकार की ओर से इनाम भी दिया जाता था।

गाँव के ज़मींदार का नाम था लखपतराय। वह बेपरवाह, आलसी और शौक़ीन आदमी था। गाँव के काम-काज में अधिक दख़ल देना उसे पसंद नहीं था। यही कारण था कि उस गाँव के किसानों को वर्ष के अधिकांश भाग में अपने ज़मींदार से कोई विशेष शिकायत नहीं रहती थी। परन्तु जिन दिनों ज़मींदार को दावत, शिकार या सरकारी अफ़सरों की ख़ातिरदारी करने का ख़ब्त सवार होता था, उन दिनों गाँववालों पर आफ़त आ जाती थी। नुमाइश के महीने में जब ज़िले के कुछ छोटे-छोटे अफ़सर इंतज़ाम करने के लिए इस गाँव में आते थे, उन दिनों उनकी ख़ातिर करते-करते किसानों की जान निकलने लगती थी।

प्रदर्शिनी की प्रतिस्पर्धा में भाग लेने का ज़मींदार को ख़ास शौक़ था। उसने कुछ बैल और घोड़े महज़ इसी काम के लिए पाल रखे थे। ज़मींदार के जानवर थे, खाने-पीने की क्या कमी? ख़ासकर नुमाइश के दिनों में एक-एक जानवर के पीछे चार-चार किसान दिन-रात भागे फिरते थे। नुमाइश का सबसे पहिला इनाम कई बरसों से लखपतराय को उसके एक बैल के लिए मिल रहा था। इस वर्ष भी ज़मींदार को यह विश्वास था कि प्रदर्शिनी का प्रथम पुरस्कार उसीके हाथ में रहेगा!

लोगों का यक़ीन था कि ज़मींदार के बैल का गोरा से कोई मुक़ाबला ही नहीं है। यदि दोनों बैलों को भिड़ा दिया जाए, तो गोरा एक ही वार में ज़मींदार के बैल को दूर पटक दे। इस कारण लोग जीवन पर इस बार की प्रदर्शिनी में सम्मिलित होने के लिए ज़ोर डाल रहे थे; मगर वह इनकार करता था। मगर यार लोग भी कब माननेवाले थे? ख़ासकर जो लोग प्रतिवर्ष ज़मींदार से नीचा देखे जाते थे, वे भला इस सुवर्ण अवसर को किस तरह हाथ से जाने देते? आख़िर लोगों ने इस वर्ष की प्रदर्शिनी में सम्मिलित होने के लिए जीवन को तैयार कर ही लिया। नतीजा यह हुआ कि इस वर्ष नुमाइश का प्रथम पुरस्कार ज़मींदार को नहीं मिल सका, जीवन ही इस इनाम का अधिकारी समझा गया।

(३)

जीवन अपनी गाड़ी को घर की तरफ़ दौड़ाये लिये जा रहा था। गोरा के लिए ख़ाली गाड़ी फूल के समान हलकी थी।

गोरा ने कल ही नुमाइश में नामवरी हासिल की थी इसलिए जीवन ने उसे आज यथेष्ट घी पिलाया था। गोरा के गले में उसने फूलों की माला डाल रखी थी। पशु होते हुए भी गोरा यह समझ गया कि आज उसका मालिक उससे विशेष प्रसन्न है। गाड़ी में बैठा हुआ जीवन अपने ऊबड़-खाबड़ स्वर में कोई ग्रामीण गीत गा रहा था।

अपने घर के सामने पहुँचते ही जीवन का हृदय किसी निकट अनिष्ट की अशंका से काँप उठा। उसके घर के द्वार पर ज़मींदार का कारिंदा खड़ा हुआ था। जीवन का उन्मुक्त संगीत सहसा रुक गया। अजान पशु ने भी मानों अपने मालिक के मन का भाव भाँप लिया, उसकी चाल धीमी पड़ गयी।

इसी समय कारिंदा ने आगे बढ़कर आदेश दिया—"जीवन, चलो, तुम्हें ज़मींदार ने याद किया है।"

"भाई साहब", कहकर जीवन ने बड़ी नरम आवाज़ से पूछा—"कुछ मालूम है कि मुझे मालिक ने क्यों बुलाया है?"

कारिंदे ने लापरवाही से जवाब दिया—"नहीं, मुझे क्या मालूम?"

जीवन ज़मींदार के सम्मुख पहुँचा। ज़मींदार लखपतराय अपने मकान के सहन में धीरे-धीरे टहल रहा था। जीवन ने वहाँ पहुँचकर उसे झुककर बंदगी की।

लखपतराय ने मुस्कुराकर कहा—"जीवन, नुमाइश की जीत के लिए बधाई!"

जीवन का हृदय काँप गया। यह ताना है या बधाई? उसने धीमे से सिर्फ़ इतना ही कहा—"यह हुज़ूर की मेहरबानी है।"

अब ज़मींदार ने खूब गंभीर होकर कहा—"जीवन, मैं सचमुच तुम्हारे बैल से बड़ा प्रसन्न हूँ। मैं उसे तुमसे ख़रीद लेना चाहता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि वह बैल तुम्हारे यहाँ बिलकुल निठल्ला रहता है; इसलिए मुझे उम्मीद है कि उसे बेचने में तुम आनाकानी न करोगे।"

जीवन काँप गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

ज़मींदार ने कहा—"बोलो, चुप क्यों हो?"

जीवन धीरे से बोला—"हुज़ूर, आपके पास जानवरों की क्या कमी है? मैं उस बैल को बेचना नहीं चाहता।"

"तुम्हें उसके बदले मुँह-माँगा दाम मिलेगा।"

"मैं उसे किसी भी दाम पर बेचना नहीं चाहता। हुज़ूर, मैं खुद भी तो आपकी ज़ायदाद हूँ!"

ज़मींदार ने अब प्रलोभन देने का प्रयत्न किया—"तुम्हारा लगान माफ़ कर दूँगा।"

जीवन ने नकारात्मक उत्तर दिया।

ज़मींदार इसपर भी निराश नहीं हुआ। अब उसने अपने ब्रह्मास्त्र का वार किया—"तुम्हें यह बैल बेच देना होगा।"

जीवन चुप रहा!

ज़मींदार ने फिर कहा—"सीधी तरह से नहीं दोगे, तो फिर किसी और उपाय से दोगे।"

जीवन को भी आवेश आ गया। उसने काँपती हुई आवाज़ में कहा—"हरगिज़ नहीं।"

ज़मींदार ने कहा—"अच्छा, जाओ!"

उस दिन के बाद से अभागे जीवन पर ज़मींदार ने सख़्ती करना शुरू किया। उससे कठिन बेगार ली जाने लगी! बेगार ऐसी ली जाती थी कि गोरा को दिन-रात काम में रहना पड़े। कभी-कभी अकेले गोरा को ही बेगार में माँग लिया जाता था। जीवन के दरिद्र परिवार पर यह एक नयी आफ़त आ खड़ी हुई। परंतु फिर भी जीवन ने पराजय स्वीकार नहीं की। अपनी क़िस्मत के भरोसे जीवन यह सब अत्याचार सहता रहा।

(4)

जंगल से लकड़ियाँ काटकर गाँव की तरफ़ लौटते हुए जीवन काँप उठा। आसमान अचानक काले-काले बादलों से घिर आया था। जीवन को जिस बात का भय था, आख़िर वही हुई। इस चौमासे के दिनों में गाँवों से तीन-चार मील दूर एक बरसाती नाला पार करके लकड़ियाँ काटने जाना सचमुच एक जोख़िम का काम था। बरसात के कारण नाले का कोई विश्वास नहीं था, वह न जाने कब भरकर बहने लगे। प्रातःकाल लखपतराय ने जीवन को इसी जंगल से बेगार में लकड़ियाँ काट लाने का आदेश दिया था। जीवन जब घर से चला, आसमान साफ़ था और नाले में भी कम पानी था। परंतु साँझ के समय ज्योंही गड्डे में लकड़ियाँ भरकर वह लौटने को तैयार हुआ, त्योंही इंद्र-देवता की सेना ने एक साथ आकाशमंडल पर चढ़ाई कर दी।

जीवन ने रास हिलाकर गोरा को भागने का आदेश दिया। बरसाती नाला इस स्थान से चार-पाँच फर्लांग ही दूर था। जीवन की इच्छा थी कि वह जिस किसी तरह गोरा को भगाकर गड्डे सहित इस नाले के पार पहुँच जाए उसके बाद देखा जाए। परंतु इस समय तक वर्षा बड़े ज़ोर से शुरू हो गयी थी। नाले के रेतीले किनारे पर पहुँचकर जीवन ने बड़े दुख के साथ देखा कि नाला खूब भरकर बह रहा है। जीवन निराश हो गया। अब कई घंटे तक इसी पार बैठे रहने को वह बाध्य था। वर्षा की बौछार जीवन के शरीर पर खुले रूप से पड़ रही थी इसलिए वह गड्डे से उतरा। उसने गोरा को गाड़ी से खोलकर किनारे की हरी-हरी घास चरने के लिए छोड़ दिया। इसके बाद गड्डे की लकड़ियों को उसने कुछ ऐसे ढंग से रखा कि उनके अंदर एक खोह-सी बन गयी। इस खोह के ऊपर अपनी चादर फैलाकर, वर्षा से बचने के लिए जीवन अंदर बैठ गया।

सहसा गर्दन उठाकर गोरा एक बार बड़े ज़ोर से गरज उठा। गोरा की यह गरज सुनकर जीवन भय से सिहर उठा। धड़कते हुए दिल से वह अपनी खोह से बाहर निकला। देखा, गोरा अब भी पहले ही की तरह निश्चितता से हरी-हरी घास चर रहा है। वर्षा इस समय भी कम नहीं हुई। नाले के मटियाले पानी में वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदें पड़कर उसे विक्षुब्ध कर रही हैं। इन बूँदों की मार से मानों वह नाला बौखला-सा उठा है। जीवन ने जंगल की तरफ़ मुड़कर देखा, चारों ओर सन्नाटे का राज्य है। केवल वर्षा पड़ने की साँय-साँय आवाज़ इस

निस्तब्धता को भंग कर रही है। जंगल के हरे-हरे वृक्ष वर्षा में एकसाथ चुपचाप स्नान कर रहे हैं। जीवन ने फिर से अपना सिर खोह में छिपा लिया। इस नीरव सन्नाटे में उसे कुछ भय प्रतीत होने लगा।

थोड़ी देर में बादल फट गये। वर्षा बंद हो गयी। पूर्व दिशा में इंद्रधनुष निकल आया। सूर्य के डूबने में अब अधिक समय नहीं रहा था। सूर्य की अंतिम किरणों ने बादलों में अब अनेकों रंग पोत दिये थे। उनके प्रतिबिंब से बरसाती नाले का पानी भी पिघले हुए सोने की उज्ज्वल धार के समान प्रतीत हो रहा था। जंगल में मोर बोलने लगे। प्रकृति का सन्नाटा भंग हो गया। चारों ओर का दृश्य स्वर्गीय हो उठा। परंतु बेगार में पकड़े गये जीवन का ध्यान इन दृश्यों की शोर नहीं था। वह बड़ी उत्कंठा से नाले का पानी कम हो जाने की प्रतीक्षा कर रहा था।

धीरे-धीरे नाले का पानी भी उतर गया। जीवन की अब जान में जान आयी। गोरा को गड्डे में जोतकर वह फिर से अपनी खोह में आ बैठा और रास हिलाकर गोरा को चलने की आज्ञा दी। सामने सूर्य अस्त हो रहा था।

किनारे के उस हरे मैदान से उतरकर गोरा नाले के रेतीले तट पर पहुँचा। परन्तु पानी के निकट पहुँचते ही गोरा किसी चीज़ को देखकर सहसा चौंक उठा। उसके पैर क्रिया-शून्य हो गये। गाड़ी रुक गयी। जीवन फिर से काँप उठा। डरते-डरते खोह में से अपना मुँह बाहर निकाला। नाले की

ओर देखते ही उसके होश गुम हो गये। उसने देखा—उत्तर की ओर गड्डे से क़रीब बीस गज़ दूर एक बड़ा-सा शेर खड़ा है और गड्डे की ओर देखकर गुर्रा रहा है।

अगले ही क्षण शेर बड़े ज़ोर से गरज उठा। उसकी गरज समीपस्थित पहाड़ी के साथ टकराकर गूंज उठी। पास के जंगल में फिर से सन्नाटा छा गया।

जीवन उसी प्रकार अनिमेष नेत्रों से शेर की तरफ़ देखता रहा। परंतु शेर ने अभी तक उसकी ओर नहीं देखा था, वह गोरा के श्वेत और मोटे-ताज़े जिस्म को देखकर ही गुर्रा रहा था। शेर की भयंकर गरज सुनकर गोरा काँप उठा। वह बड़े करुण स्वर में चिल्लाया—'बाँ!' बाँ!

इसी समय शेर धीरे-धीरे बड़ी शान से क़दम बढ़ाता हुआ गोरा की तरफ़ बढ़ा। जीवन इस समय भी खोह से गर्दन बाहर निकाले शेर की ओर देख रहा था। यदि वह अब भी चाहता, तो खोह में छिपकर अपनी जान बचा सकता था।

शेर को अपनी तरफ़ बढ़ता हुआ देखकर वह अबोध जानवर अत्यधिक करुण स्वर से फिर चिल्लाया—'बाँ! बाँ!!'

गोरा का करुण स्वर सुनकर जीवन सहसा विचिलित हो उठा। उसे स्मरण हो आया—आज से दो वर्ष पूर्व गोरा की यही करुण 'बाँ' सुनकर उसने गीदड़ों से उसकी रक्षा की थी। क्या आज वह उसे शेर के मुँह से नहीं बचा सकता?

जीवन कूदकर गोरा की पीठ पर लिपट गया। अगले ही क्षण में वह शेर एक बार फिर बड़े ज़ोर से गरजकर गोरा पर

झपटा ; परंतु उसके तेज़ नाखून गोरा के भरे हुए शरीर में न धँसकर जीवन की सूखी हुई पीठ में जा धँसे ।

शेर ने उसी शिकार को पर्याप्त समझा । वह दरिद्र, परंतु आश्रितवत्सल जीवन की पवित्र देह को लेकर जंगल में प्रविष्ट हो गया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल जीवन के रिश्तेदार उसे ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँचे । गोरा अब भी उसी तरह निश्चल भाव से खड़ा था । गड्डे की खोह के ऊपर जीवन की मैली चादर अब भी उसी तरह फैली हुई थी । गोरा की पीठ पर खून के बड़े-बड़े दाग और रेत पर शेर के पंजों के बड़े-बड़े निशान देखकर उन्हें सारी घटना समझने में देर न लगी ।

* * *

जीवन का यह आत्मबलिदान आसपास के सब गाँवों में प्रसिद्ध है । लोग उसका नाम बड़ी श्रद्धा से लेते हैं । गोरा आज भी जीवित है, परंतु अब वह उतना मज़बूत नहीं रहा । लोग कहते हैं कि स्वामी के शोक में वह दिन प्रति दिन घुलता चला जा रहा है । लखपतराय भी अपने व्यवहार पर शर्मिन्दा है । उस दिन के बाद से फिर कभी उसने गोरा के लिए आग्रह नहीं किया ।

7. देशभक्त

श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

"स्वामिन्, आज कोई सुन्दर सृष्टि करो! किसी ऐसे प्राणी का निर्माण करो, जिसकी रचना पर हमें गौरव हो सके। क्यों?"

"सचमुच? प्रिये आज तुम्हें क्या सूझा, जो सारा धंधा छोड़कर यहाँ आयी हो और मेरी सृष्टि-परीक्षा लेने को तैयार हो?"

"तुम्हारी परीक्षा और मैं लूंगी? हरे, हरे! मुझे व्यर्थ ही काँटों में क्यों घसीट रहे हो, नाथ? यों ही बैठी-बैठी तुम्हारी अद्भुत रचना 'मर्त्यलोक' का तमाशा देख रही थी। जब जी ऊब गया, तब तुम्हारे पास चली आयी हूँ। अब संसार में मौलिकता नहीं दिखाई पड़ती। वही पुरानी गाथा चारों ओर दिखाई-सुनाई पड़ रही है। कोई रोता है, कोई खिलखिलाता है; एक प्यार करता है, दूसरा अत्याचार करता है; राजा धीरे-धीरे भीख माँगने लगता है और भिक्षुक शासन करने। इन बातों में मौलिकता कहाँ? इसलिए प्रार्थना करती हूँ, कोई मनोरंजक सृष्टि सँवारो। संसार के अधिकतर प्राणी तुमको शाप देते हैं, एक बार आशीर्वाद भी लो।"

"अच्छी बात है। इस समय चित्त भी प्रसन्न है। किसीसे मानव-सृष्टि की आवश्यक सामग्रियाँ यहीं मँगवाओ। आज मैं तुम्हारी सहायता से सृष्टि करूँगा।"

"मैं और तुमको सहायता दूँगी! तब रहने दो। हो चुकी सृष्टि! सृष्टि करने की योग्यता यदि मुझमें होती, तो मैं तुमको कष्ट देने के लिए यहाँ आती?"

"नाराज़ क्यों होती हो भाई, तुमसे पुतला तैयार करने को कौन कहता है? तुम यहाँ पर चुपचाप बैठी-भर रहो। हाँ, कभी-कभी मेरी ओर और कभी-कभी मेरी कृति की ओर अपने मधुर कटाक्ष को फेर दिया करना। तुम्हारी ही सहायता से सृष्टि में जान आ जाएगी। समझीं?"

"समझी। देखती हूँ, तुम्हारी आदत भी कलियुगिये बूढ़ों-सी हुई जा रही है। अभी तक आँखों में जवानी का नशा छाया हुआ है।"

"और तुम्हारी आदत तो बहुत ही अच्छी हुई जा रही है। बूढ़े मारवाड़ियों की युवती कामिनियों की तरह जब होती है तभी 'खाँव, खाँव' किया करती हो। चलो, जल्दी करो, सब चीज़ें मँगाओ।"

(२)

क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और पवन के सम्मिश्रण से विधाता ने एक पुतला तैयार किया। इसके बाद उन्होंने सबसे पहले तेज को बुलाकर उस पुतले में प्रवेश करने को कहा। तेज के बाद सौंदर्य, दया, करुणा, प्रेम, विद्या, बुद्धि, बल, संतोष, उत्साह, धैर्य, गांभीर्य आदि समस्त सद्गुणों से उस पुतले को सजा दिया। अंत में आयु और भाग्य की रेखाएँ बनाने के लिए ज्यों ही विधाता ने लेखनी उठायी, त्यों ही ब्रह्माणी ने रोका—

"सुनिये भी, इसके भाग्य में क्या लिखने जा रहे हैं? और आयु कितनी दीजिएगा?"

"क्यों? तुमको इन बातों से मतलब? तुम्हें तो तमाशा-भर देखना है, वह देख लेना। भौहें तानने लगी न? अच्छा, लो, सुन लो। इसके भाग्य में लिखी जा रही है भयंकर दरिद्रता, दुख, चिंता और इसकी आयु होगी बीस वर्षों की।"

"अरे! यह आप क्या तमाशा कर रहे हैं? बल, साहस, दया, तेज, सौंदर्य, विद्या, बुद्धि आदि गुणों के देने के बाद दरिद्रता, दुख और चिंता आदि के देने की क्या आवश्यकता है? फिर, केवल बीस वर्षों की अवस्था! इन्हीं कारणों से तो मर्त्यलोक के कवि आपकी शिकायत करते हैं। क्या फिर किसीसे 'नाम चतुरानन, पै चूकते चले गये' लिखवाने का विचार है?"

विधाता ने मुस्कुराकर कहा—"अब तो रचना हो गयी! चुपचाप तमाशा-भर देखो उसकी आयु इसलिए कम रखी है कि जिसमें हमें तमाशा जल्द दिखाई पड़े।"

ब्रह्माणी ने पूछा—"इसे मर्त्यलोकवाले किस नाम से पुकारेंगे?"

प्रजापति ने गर्व-भरे स्वर में उत्तर दिया—"देशभक्त।"

(8)

अमरावती से इंद्र ने, कैलास से शिव ने, वैकुंठ से कमलापति ने संसार से रंगमंच पर देशभक्त का प्रवेश उस समय देखा, जब उसकी अवस्था उन्नीस वर्ष की हो गयी। इसमें

कोई आश्चर्य की बात नहीं। देवमंडली का एक-एक दिन हमारी अनेक शताब्दियों से भी बड़ा होता है। हमारे उन्नीस वर्ष तो उनके कुछ मिनिटों से भी कम थे।

देशभक्त के दर्शनों से भगवान कामारि प्रसन्न होकर नाचने लगे। उन्होंने अपनी प्राणेश्वरी पार्वती का ध्यान देशभक्त की ओर आकर्षित करते हुए कहा—"देखो, यह सृष्टि की अभूतपूर्व रचना है। कोई भी देवता देशभक्त के रूप में जन्म कर अपने को धन्य समझ सकता है। प्रिये, इसे आशीर्वाद दो।" प्रसन्नवदना उमा ने कहा—"देशभक्त की जय हो!" एक दिन देशभक्त के तेजपूर्ण मुखमंडल पर अचानक कमला की दृष्टि पड़ गयी। उस समय वह (देशभक्त) हाथ में पिस्तौल लिये किसी देशद्रोही का पीछा कर रहा था। इंदिरा ने घबराकर विष्णु को उसकी ओर आकर्षित करते हुए कहा—"यह कौन है? मुख पर इतना तेज, ऐसी पवित्रता और करने जा रहे हैं राक्षसी कर्म—हत्या! यह कैसी लीला है, लीलाधर!"

विष्णु ने कहा—"चुपचाप देखो।"

परित्राणाम साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

यदि यह देशभक्त राक्षसी काम करने जा रहा है, तो राम कृष्ण, प्रताप, शिवा, नेपोलियन—सबने राक्षसी कर्म किया है। देवि, इसे प्रणाम करो! यह कर्ता की पवित्र कृति है।"

हाथ की पिस्तौल देशद्रोही के मस्तक के सामने कर देशभक्त ने कहा—"मूर्ख! पश्चात्ताप कर, देशद्रोह से हाथ

खींचकर मातृसेवा की प्रतिज्ञा कर। नहीं तो मरने के लिए तैयार हो जा।"

देशद्रोही के मुख पर घृणा और अभिमान की मुस्कुराहट दौड़ गयी। उसने शासन के स्वर में उत्तर दिया—"अज्ञानी, सावधान! हम शासकों के लाड़ले हैं। हमारे माँ-बाप और ईश्वर, सर्वशक्तिमान सम्राट हैं। सम्राट के सम्मुख देश की बड़ाई?"

"अंतिम बार पुनः कह रहा हूँ, माता की जय बोल, अन्यथा इधर देख।" देशभक्त की पिस्तौल गरजने के लिए तैयार हो गयी।

सिर पर संकट देखकर देशद्रोही ने अपनी जेब से सीटी निकालकर ज़ोर से बजायी। जान पड़ता है, देशद्रोही के अनेक रक्षक गुप्त रूप से उसके साथ थे। देखते-देखते बीस देशद्रोहियों का दल देशभक्त की ओर लपका। फिर क्या था, देशभक्त की पिस्तौल गरज उठी! क्षण-भर में देशद्रोहियों का सरदार कबूतर की तरह पृथ्वी पर लोटने लगा! गिरफ़्तार होने के पूर्व सफल प्रयत्न से देशभक्त आनंद-विभोर होकर चिल्ला उठा—"माता की जय हो!"

काँपते हुए इंद्रासन ने, पुष्पवृष्टि करते हुए नंदन-कानन ने, तांडव-नृत्य में लीन रुद्र ने, कलकल करती हुई सुर-सरिता ने एक स्वर से कहा—"देशभक्त की जय हो।"

विधाता प्रेम-गद्गद होकर ब्रह्माणी से बोले, "देखती हो, देशभक्त के चरण-स्पर्श से अभागा कारागार अपने को स्वर्ग समझ

रहा है! लोहे की लड़ियों, हथकड़ी-बेड़ियों ने मानों पारस पा लिया है! संसार के हृदय में प्रसन्नता का समुद्र उमड़ रहा है, वसुंधरा फूली नहीं समाती! यह है मेरी कृति! यह है मेरी विभूति!! प्रिये! गाओ, मंगल मनाओ! आज मेरी लेखनी धन्य हुई!"

(4)

जिस दिन देशभक्त की जीवनी का अंतिम पृष्ठ लिखा जानेवाला था, उस दिन स्वर्गलोक में आनंद का अपार पारावार उमड़ रहा था। त्रिंशत्कोटि देवांगनाओं की थालियों को उदार कल्पवृक्ष ने अपने पुष्पों से भर दिया था, अमरावती ने अपना अपूर्व शृंगार किया था, चारों ओर मंगल-गान गाये जा रहे थे।

समय से बहुत पहले ही देवतागण विमान पर आरूढ़ होकर आकाश में विचरने और देशभक्त के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

* * *

सम्राट के समर्थक भीषण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर एक बड़े मैदान में खड़े थ। देशभक्त पर सम्राट के प्रति विद्रोह का अपराध लगाकर न्याय का नाटक खेला जा चुका था। न्यायाधीश की यह आज्ञा सुनायी जा चुकी थी कि या तो देशभक्त अपने कर्मों के लिए पश्चात्ताप प्रकट कर सम्राट की जय-घोषणा करे या तोप से उड़ा दिया जाए! देशभक्त पश्चात्ताप क्यों करता? अतः उसे सम्राट के सैनिकों ने जंज़ीर से कसकर तोप के सम्मुख खड़ा कर दिया।

सम्राट के प्रतिनिधि ने कहा—"अपराधी! न्याय की रक्षा के लिए अंतिम बार फिर कह रहा हूँ, सम्राट की जय-घोषणा कर पश्चात्ताप कर ले!"

मुस्कुराते हुए बंदी देशभक्त ने कहा—"तुम अपना काम करो, मुझसे पश्चात्ताप की आशा व्यर्थ है। तुम मुझसे सम्राट की जय कहलाने के लिए क्यों मरे जा रहे हो? सच्चा सम्राट कहाँ है? तुम्हारे कहने से संसार के लुटेरों को मैं कैसे सम्राट मान लूँ? सम्राट मनुष्यता का द्रोही हो सकता है? सम्राट न्याय का गला घोंट सकता है? सम्राट किसीके सिर पर अपना दंड ज़बरदस्ती लाद सकता है? भाई, तुम जिसे सम्राट कहते हो, उसे मनुष्यता और मनुष्यता के उपासक 'राक्षस' कहते हैं। फिर सम्राट की जय-घोषणा कैसी? तुम मुझे तोप से उड़ा दो, इसीमें सम्राट का मंगल है, इसीसे उसके पापों का घड़ा फूटेगा और उसे मुक्ति मिलेगी।"

देवमंडली के बीच में बैठी हुई माता मनुष्यता की गोद में बैठकर देशभक्त ने और साथ ही त्रिंशत्कोटि देवताओं ने देखा, पंचतत्व के एक पुतले को अत्याचार के उपासकों ने तोप से उड़ा दिया। उस पुतले के एक-एक कण को देवताओं ने मणि की तरह लूट लिया। बहुत देर तक देवलोक 'देशभक्त की जय' से मुखरित रहा।

* * *

8. कर्तव्य

श्रीमती कमलादेवी चौधरी

उषा का पति उसे बहुत ही प्यार करता है। सारे मोहल्ले की स्त्रियों में दिन-रात इसी बात की चर्चा रहती है। उषा भी अपने को अन्य स्त्रियों से भाग्यशालिनी मानती है। वह देखती है, मेरे पति के समान अन्य किसी स्त्री के पति अपनी पत्नी का इतना आदर-सम्मान और प्यार नहीं करते। मेरा पति तो किसी बात में भी मेरी उपेक्षा नहीं करता। यथाशक्ति मेरी फ़रमाइशों को पूरा करने में वह कभी भी लापरवाही नहीं करता।

वह चाहता है, मेरी उषा सदा ही सजी-वजी दिखलाई दे। इस कारण वह उषा के लिए अनेक प्रकार के शृंगार की वस्तुएँ लाया करता है और बहुत आग्रह से उषा को सजाता है, अपने साथ सैर और सिनेमा को भी ले जाता है।

उषा की सहेलियाँ कहती हैं—"अरे तूने उनपर क्या जादू कर रखा है, मुझे बता दे न?"

उषा का हृदय मीठे अभिमान से भर जाता है। हँसकर वह कहती तो यही है, "मेरे लिए क्या कोई अनोखी बात है? तुम्हारे पति किस बात में तुम्हारा लाड़ नहीं करते?" किंतु मन में अवश्य सोचती है कि सहेलियों की बातों में सचाई है। जो अत्यधिक पति-प्रेम उषा को प्राप्त है, वह किसी भी सहेली

को मयस्सर नहीं। उसका पति तो असीम प्रेम के कारण उसे कभी पिता के घर भी जाने नहीं देता है। एक दिन का बिछोह भी उसे असह्य है।

(२)

हरिहर क्षेत्र का मेला बिहार प्रांत का मशहूर मेला है। मवेशियों का इससे बड़ा मेला दूसरा नहीं होता। इस कारण दूर-दूर के लोग इस मेले में सम्मिलित होते हैं।

आज मेले का तीसरा दिन था, गंडक के किनारे भीड़ थी। चारों ओर मेला भरा था। जल के अन्दर किश्तियों की बाढ़-सी आ रही थी। फिर भी बैठनेवालों को किश्ती खाली न मिलती थी। संध्या का समय था; इसलिए लोग बोटिंग का आनंद लेने को उतावले हो रहे थे।

उषा भी अपने पति के साथ एक बड़ी नाव पर बैठी। मल्लाह लोग 'नहीं-नहीं' करते ही रहे; किंतु भीड़ में कौन किसकी सुनता है! जब तक नाव खुले-खुले, उसपर बहुत भीड़ हो गयी।

बोझ के कारण मल्लाहों का साहस टूट गया। किश्ती बीच धारा में आकर डगमगाती हुई फँस गयी। तुरंत ही मल्लाहों ने नौका डूबने का ऐलान कर दिया और वे सब जल में कूदकर प्राण बचाने की चेष्टा करने लगे।

एक-एक करके सभी मनुष्य नाव से कूद पड़े। जो तैरने की कला के विशेषज्ञ नहीं थे, वे भी यह सोचकर कि मरना तो है ही फिर साहस से क्यों न मरा जाए, जीवन-रक्षा के लिए प्रयास करने लगे।

नाव पर उषा और पति दो ही प्राणी शेष रह गये थे। पति महाशय धोती को फेंट कसकर कूदने की चेष्टा में थे और उषा भयभीत हिरणी की भाँति एकटक पति का मुख निहार रही थी। उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था और उसी प्रकार नौका भी हिलोरें मारकर अपने जलमग्न होने का संकेत कर रही थी। वायु की गति बड़ी तीव्र हो गयी। उषा ने भय से आँखें बंद कर लीं। उसे ऐसा जान पड़ा, मानों प्रलय हुआ जा रहा है और अंतिम समय है।

अब तक वह अपने पति की मंगल-कामना के हेतु मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी; परन्तु अब सब भूलकर उसकी इच्छा हुई कि पति की छाती से कसकर लिपट जाऊँ। अंतिम समय भी उसे हृदय से विलग होने देने की इच्छा नहीं होती थी।

उषा ने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ाकर पति को पकड़ने की चेष्टा की, किंतु व्यर्थ! पति महाशय तो उषा पर बिना दृष्टि डाले ही नाव से बाहर हो चुके थे और प्राण-रक्षा की चेष्टा में व्यस्त थे।

उषा आँखें बंद करके नाव में गिर पड़ी और मृत्यु का आह्वान करने लगी।

दूर खड़े हुए हज़ारों मनुष्यों की आँखें इस दृश्य को देखने में तल्लीन थीं। उनके हृदय इस डूबनेवाली की प्राण-रक्षा के लिए एक स्वर से शुभकामना कर रहे थे।

(३)

ईश्वर भी एक साथ इतने मनुष्यों की प्रार्थना को अवहेलना न कर सका। हलकी हो जाने के कारण नाव डूबी नहीं; बल्कि किनारे की ओर आ गयी। कुछ साहसी और सहृदय मनुष्य प्रथम ही उषा को बचाने के लिए जल में कूद चुके थे। वे लोग भय से बेहोश उषा को तट पर ले आये।

उसके प्रति कितने ही हृदयों में सहानुभूति का स्रोत उमड़ चुका था। उपचार के लिए जनसमुदाय की भीड़ लग गयी। सभी ईश्वर की अनुकंपा का गुण-गान कर रहे थे और उनके पति की ओर देखकर मुस्कुरा रहे थे। दो चार मनुष्यों ने तो कह ही डाला, तुम तो अच्छे तैराक जान पड़ते हो, साथ ही स्त्री को बचाने की चेष्टा करना भी तो तुम्हारा कर्तव्य था!

बेचारी उषा टुकुर-टुकुर पति का मुँह निहार रही थी। इतनी भीड़ में वह क्या करती? एकांत होता तो भले ही पति को उपलंभ दे लेती।

उस समय तो उसे ऐसा जान पड़ रहा था, मानों वह स्वयं ही अपनी दृष्टि में गिर गयी हो। अब उसका कुछ मूल्य ही नहीं रह गया है। व्यर्थ ही भगवान ने उसे बचा लिया, मर जाती तो ठीक था।

किंतु अब तो बच ही गयी, ईश्वर इतनी दया करे कि यह घटना किसी परिचित को मालूम न हो। उसने आँखें उठाकर लज्जायुक्त दृष्टि से ऊपर देखने का प्रयास किया— यहाँ कोई

परिचित व्यक्ति तो नहीं, एक-दो नहीं हैं? कितने ही खड़े थे—उसने आँखें नीची कर लीं।

क्षण-भर में भविष्य के कितने ही चित्र आँखों के सामने घूम गये। उसके प्रेम पर ईर्ष्या करनेवाले अब प्रसन्न होंगे, सहेलियाँ दूसरे ही प्रकार की चर्चा करेंगी—क्या यह उषा का वही पति है जो प्रेम के कारण उसे पिता के घर भी नहीं जाने देता था; कहता था, उषा! तुम्हारे बिना इस घर में कैसे रहूँगा?

उसका वह प्रेम कैसा था? उषा मर भी जाती, तो क्या पति को कुछ अधिक शोक होता? घर में अकेला रहना असंभव है। एक-एक दिन भी असहनीय होता, किंतु उसका भी तो उपाय था। कुछ लोक-लाज के निर्वाहोपरांत दूसरा विवाह हो जाता। वह मूर्ख भी समझती, मेरा पति मुझे बहुत प्रेम करता है। किंतु यह क्या? व्यर्थ में उषा ऐसी बातें क्यों सोच रही है? भगवान ने उसपर कम कृपा नहीं की, जो उसका पति भीषण दुर्घटना से बच गया। उसे ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद देना चाहिए और खुशी मनानी चाहिए। पति के हाथ से गंगा पर कुछ दान-पुण्य भी करवाना चाहिए। ईश्वर ने बहुत बड़ी अलफ़ काट दी।

व्यर्थ किसीपर दोषारोपण करना उचित नहीं है। संसार में कौन ऐसा है, जिसके प्रेम में स्वार्थ की छाया नहीं होती? किंतु कर्तव्य? हाँ, मानव-समाज कर्तव्य ही की शृंखला में बँधा है? किंतु इसमें अपनी प्राण-रक्षा करना भी तो कर्तव्य है!

स्त्री, पुरुष, पुत्र, पिता यह सब तो मोह-जाल है। कोई किसीका नहीं है। मोह में फँसकर अपने प्राण बचाने की सामर्थ्य होते हुए भी चेष्टा न करना आत्महत्या ही है; और आत्महत्या करना भी तो पाप है। कुछ समय पूर्व भारतीय महिलाएँ पति के साथ सती हो जाना ही अपना कर्तव्य मानती थीं, यही उनका आदर्श था; किंतु क्या वह आत्महत्या भी पाप थी?

इस प्रकार की उधेड़बुन में पड़कर उषा घबरा उठी। वह गहन विषय उसके हल करने का नहीं है। गीताकार ही जाने!

स्त्री के लिए इससे बढ़कर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है? भगवान ने उसके पति की एक आयी अलफ़ काट दी। स्त्री को तो इतने ही में संतुष्ट होना चाहिए।

उसने अपने हृदय को दृढ़ किया और आँखों में प्रसन्नता भरकर उठ खड़ी हुई। पति की लज्जा दूर करने की चेष्टा में बोली—"चलो, अब घर चलें; परमात्मा ने दया करके हम लोगों के प्राण बचा लिये। आप चिंता क्यों करते है?"

फिर भी उसका हृदय हलका नहीं हुआ, कुछ काँटा-सा खटकता ही रहा। सहेलियाँ प्रेम का विषय लेकर जब यह चर्चा छेड़ेंगी, तो वह क्या उत्तर देगी?

(4)

मृत्यु-शय्या पर पड़े अपने पति के सिरहाने बैठी उषा गरम-गरम आँसू बहा रही थी। आज छः महीने से उसके पति को ऐसे ज्वर ने घेरा है कि दिन पर दिन उसकी दशा

बिगड़ती जाती है। एक दिन को भी इस पापी ज्वर ने छोड़ा नहीं और न छूटने की आशा ही है। डाक्टर कहते हैं टी.बी. है।

टी. बी. क्या ऐसा असाध्य रोग है, जिससे बचने का संसार में कोई उपाय ही नहीं है? फिर क्या होगा? ईश्वर! क्या होनेवाला है!

इससे आगे वह सोच न सकी। आँखें और हृदय दोनों ही नदी के प्रवाह की भाँति उमड़ आये। उसी समय वहाँ सांत्वना के हेतु समीप ही दूसरे पलंग पर सोता हुआ बच्चा जाग पड़ा और रोकर उसने पुकारा—"अम्मा!"

उषा ने आँखें पोंछ लीं और कुछ सेकंड तो आँखें बंद कर मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना की—मुझ अकेली को रोने के लिए बचा न रखना।

बच्चे को गोद में उठाते ही उसे ध्यान आया कि हम दोनों के पीछे उसका क्या होगा। फिर संसार में अबोध बालक का कौन है? पति के बाद भी इसके हेतु अपने प्राण रखने की चेष्टा करना क्या मेरा धर्म नहीं है? किंतु इस कल्पना ने फिर उसके अंदर तूफ़ान मचा दिया। कंठ रुंधने-सा लगा, आँखें छलछला आयीं।

उसका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। यह क्या? वह ही नहीं, यह तो सारा घर ही काँप रहा है। पति की चारपाई भी तो हिल रही है। वह बच्चे को लिये हुए चारपाई के समीप भाग आयी। उसी समय चारों ओर कोलाहल मच गया—भूकंप! भूकंप!!

उषा के रोगी पति ने धीमी आवाज़ से कहा—"उषा! मुझमें तो उठने की शक्ति नहीं है, मेरी चिंता छोड़ो और बच्चे को लेकर भाग जाओ।"

उषा ने भी देखा कि वायु के झकोरों के साथ मिट्टी और रेत घर में भी आ रही है। भयंकर धड़-धड़ की आवाज़ के साथ घर गिरना ही चाहता है; किन्तु उसके पास पति को बचाने का कोई उपाय नहीं है। इस समय वह घर में अकेली है और गोद में बच्चा है।

इस विचार ही में कमरे की एक दीवार गिर पड़ी। उषा का पति चिल्ला पड़ा—"उषा! विदा! तुम भागो!"

उषा बच्चे को छाती से दबाकर बाहर की ओर भागी और भयभीत रोते हुए बच्चे को बाहर फेंककर, तुरंत ही पति को बाहर निकालने के प्रयत्न में फिर कमरे में गयी; परंतु व्यर्थ! उसी समय धड़-धड़ की आवाज़ के साथ ऊपर की छत आ गिरी और साथ ही उषा भी पति की छाती पर गिर पड़ी!

बेचारी उषा को इतना भी अवकाश न मिला, जो पुत्र के लिए ईश्वर से मंगल-कामना भी कर सकती। दोनों पति-पत्नी क्षुधित भूमि के गर्भ में समा गये!

9. मिठाईवाला

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता—"बच्चों को बहलानेवाला !"

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र, किंतु मादक मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुननेवाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कंठ से फूटा हुआ उपर्युक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हलचल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिये हुए युवतियाँ चिकों को उठाकर छज्जों पर से नीचे झाँकने लगतीं। गलियों और उनके अन्तर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुंड उसे घेर लेता और तब वह खिलौनेवाला वहीं बैठकर खिलौने की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौनों का मोल-भाव करने लगते। पूछते—"इछका दाम क्या है, औल इछका, औल इछका ?" खिलौनेवाला बच्चों को देखता, उनकी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों और हथेलियों से पैसे ले लेता और बच्चों के इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फिर बच्चे उछलने-कूदने लगते और तब फिर खिलौनेवाला उसी प्रकार कहता—"बच्चों को बहलानेवाला, खिलौनेवाला !" सागर की हिलोर की भाँति उसका वह मादक गान गली-भर के

मकानों में इस ओर से उस ओर तक लहराता हुआ पहुँचता और खिलौनेवाला आगे बढ़ जाता।

राय विजयबहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आये। वे दो बच्चे थे, चुन्नू और मुन्नू। चुन्नू जब खिलौने ले आया, तो बोला—"मेला घोला कैछा छुन्दल ऐ!" मुन्नू बोला—"औल देखो मेला आती कैछा छुन्दल ऐ!"

दोनों अपने घोड़े-हाथी लेकर घर-भर में उछलने लगे। इन बच्चों की माँ रोहिणी कुछ देर खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रही। अंत में उसने दोनों बच्चों को बुलाकर पूछा, "अरे ओ चुन्नू-मुन्नू, ये खिलौने तुमने कितने में लिये हैं?"

मुन्नू बोला—"दो पैछे में। खिलौनेवाला दे गया ऐ।"

रोहिणी सोचने लगी—इतने सस्ते कैसे दे गया है?

कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया है, इतना तो निश्चित है।

एक ज़रा-सी बात ठहरी, रोहिणी अपने काम में लग गयी। फिर कभी उसे इसपर विचार करने की आवश्यकता ही भला क्यों पड़ती?

(2)

छः महीने बाद—

नगर-भर में दो ही चार दिनों में एक मुरलीवाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—"भई वाह! मुरली बजाने में वह एक ही उस्ताद है। मुरली बजाकर

वह मुरली बेचता भी है ; सो भी दो-दो पैसे में। भला इसमें उसे क्या मिलता होगा? मेहनत भी तो न आती होगी।"

एक व्यक्ति ने पूछ दिया—"कैसा है वह मुरलीवाला, मैंने तो उसे नहीं देखा।"

उत्तर मिला—"उमर तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस-बत्तीस की होगी। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफ़ा बाँधता है।"

"वही तो नहीं, जो पहले खिलौने बेचा करता था?"

"क्या वह पहले खिलौने बेचता था?"

"हाँ, जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार का वह भी था।"

"तो वही होगा। पर भई, है वह एक ही उस्ताद।"

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरलीवाले की चर्चा होती। प्रतिदिन नगर की प्रत्येक गली में उसका मादक मृदुल स्वर सुनाई पड़ता—"बच्चों को बहलानेवाला, मुरलियावाला!"

रोहिणी ने भी मुरलीवाले का वह स्वर सुना। तुरंत ही उसे खिलौनेवाले का स्मरण हो आया। उसने मन ही मन कहा—"खिलौनेवाला भी इसी तरह गा-गाकर खिलौने बेचा करता था।"

रोहिणी उठकर अपने पति विजयबाबू के पास गयी और बोली—"ज़रा उस मुरलीवाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू के लिए भी ले लूँ। क्या जाने वह इधर आये या न आये? वे भी, जान पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गये हैं।"

विजयबाबू एक समाचारपत्र पढ़ रहे थे। उसी तरह उसे लिए हुए वे दरवाज़े पर आकर मुरलीवाले से बोले—"क्यों भई, किस तरह देते हो मुरली?"

किसीकी टोपी गली में गिर पड़ी। किसीका जूता पार्क में ही छूट गया और किसीकी सूथनी ही ढीली होकर लटक आयी। इस तरह दौड़ते-हाँफते हुए बच्चों का झुंड आ पहुँचा। एक स्वर हो सब बोल उठे—"अम बी लेंदे मुल्ली, औल अम बी लेंदे मुल्ली।"

मुरलीवाला हर्ष से गद-गद हो उठा। बोला—"सबको देंगे भैया, ज़रा रुको, ज़रा ठहरो, एक-एक को लेने दो। अभी इतनी जल्दी हम कहीं लौट थोड़े ही जाएँगे? बेचने तो आये ही हैं और हैं भी इस समय मेरे पास एक-दो नहीं, पूरी सत्तावन। हाँ बाबूजी, क्या पूछा था आपने, कितने में दी?....दी तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाब से हैं, पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूंगा।"

विजयबाबू भीतर-बाहर दोनों रूपों में मुस्कुरा दिये। मन ही मन कहने लगे—'कैसा ठग है! देता सबको इसी भाव से है, पर मुझपर उलटा एहसान लाद रहा है।' फिर बोले—"तुम लोगों की झूठ बोलने की आदत ही होती है। देते होगे सभी को दो-दो पैसे में, एहसान का बोझ मेरे ही ऊपर लाद रहे हो!"

मुरलीवाला एकदम अप्रतिभ हो उठा। बोला—"आपको क्या पता बाबूजी कि इनकी असली लागत क्या है? यह तो ग्राहकों का दस्तूर होता है कि दूकानदार चाहे हानि ही उठाकर

चीज़ क्यों न बेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं—दूकानदार हमें लूट रहा है। आप भला, काहे को विश्वास करेंगे? लेकिन सच पूछिये बाबूजी, इनका असली दाम दो ही पैसा है। आप कहीं से भी दो-दो पैसे में ये मुरलियाँ नहीं पा सकते। मैंने तो पूरी एक हज़ार बनवायी थीं, तब मुझे यह भाव पड़ती है।"

विजयबाबू बोले—"अच्छा, अच्छा, मुझे ज़्यादा वक़्त नहीं है। जल्दी से निकाल दो!"

दो मुरलियाँ लेकर विजयबाबू फिर मकान के भीतर पहुँच गये।

मुरलीवाला देर तक उन बच्चों के झुंड में मुरलियाँ बेचता रहा। उसके पास कई रंग की मुरलियाँ थीं। बच्चे जो रंग पसंद करते, मुरलीवाला उसी रंग की मुरली निकाल देता।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है, तुम यही ले लो बाबू, राजा बाबू, तुम्हारे लायक़ तो बस, यह है!....हाँ, भैया, तुमको वही देंगे। ये लो!....तुमको वैसी न चाहिए, ऐसी चाहिए? वह नारंगी रंग की? अच्छा, यही लो।....पैसे नहीं है? अच्छा, अम्मा से पैसे ले आओ। मैं अभी बैठा हूँ।....तुम ले आये पैसे? अच्छा, यह लो, तुम्हारे लिए मैंने पहले ही से यह निकाल रखी थी!....तुमको पैसे नहीं मिले? तुमने अम्मा से ठीक तरह से माँगा न होगा। धोती पकड़के, पैरों में लिपटके अम्मा से पैसे माँगे जाते हैं, बाबू! हाँ, फिर जाओ। अब की बार मिल जाएँगे।....दुअन्नी है? तो क्या हुआ; ये छे पैसे वापस लो,

ठीक हो गया न हिसाब ? मिल गये पैसे ? देखो, मैंने कैसी तरक़ीब बतायी !....अच्छा, अब तो किसीको नहीं लेना है ? सब ले चुके ?....तुम्हारी माँ के पास पैसे नहीं हैं ? अच्छा, तुम भी यह लो....अच्छा, तो अब मैं चलता हूँ।"

इस तरह मुरलीवाला फिर आगे बढ़ गया।

(३)

आज अपने मकान में बैठी हुई रोहिणी मुरलीवाले की सारी बातें सुनती रही। आज भी उसने अनुभव किया कि बच्चों के साथ इतने प्यार से बातें करनेवाला फेरीवाला पहले कभी नहीं आया था। फिर, वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है और आदमी कैसा भला जान पड़ता है ! समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा-मारा फिरता है। पेट जो न कराये सो थोड़ा।

इसी समय मुरलीवाले का तीक्ष्ण स्वर निकट की दूसरी गली में से सुनाई पड़ा—"बहलानेवाला, मुरलियावाला !"

रोहिणी इसे सुनकर मन ही मन कहने लगी—'और कैसा मीठा स्वर है उसका !'

बहुत दिनों तक रोहिणी को मुरलीवाले का यह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति स्नेहसिक्त बातें याद आती रहीं। महीने के महीने आये और चले गये। पर मुरलीवाला न आया। फिर धीरे-धीरे उसकी स्मृति क्षीण होती गयी।

(4)

आठ मास बाद—

सरदी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके अपने मकान की छत पर चढ़कर आजानुविलंबित केश-राशि सुखा रही थी। इसी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलानेवाला, मिठाईवाला।"

मिठाईवाले का यह स्वर परिचित था, झट-से रोहिणी नीचे उतर आयी। इस समय उसके पति मकान में नहीं थे। हाँ, उसकी वृद्धा दादी थी। रोहिणी उसके निकट आकर बोली—"दादी, चुन्नू-मुन्नू के लिए मिठाई लेनी है। ज़रा कमरे में चलकर ठहराओ तो। मैं उधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो। ज़रा हटकर मैं भी चिक की ओट में बैठी रहूँगी।"

दादी उठकर कमरे में आकर बोली, "ऐ मिठाईवाले, इधर आना।"

मिठाईवाला निकट आ गया। बोला—"माँ, कितनी मिठाई दूं? नयी तरह की मिठाइयाँ हैं; रंग-बिरंगी; कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी और ज़ायकेदार। बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे इन्हें बड़े चाव से चूसते हैं। कितनी दूं? चपटी, गोल और पहलदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।

दादी बोली—"सोलह तो बहुत कम होती हैं। भला, पचीस तो देते।"

मिठाईवाला—"नहीं दादी, अधिक नहीं दे सकता। इतनी भी कैसे देता हूँ, यह अब मैं तुम्हें क्या....खैर, मैं अधिक, तो न दे सकूँगा।"

रोहिणी दादी के पास ही बैठी थी। बोली—"दादी, फिर भी काफ़ी सस्ती दे रहा है। चार पैसे की ले लो। ये पैसे रहे।"

मिठाईवाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

"चार पैसे की दे दो। अच्छा, पचीस न सही; बीस ही दो। अरे हाँ, मैं बूढ़ी हुई, मोल-भाव मुझे तो अब ज़्यादा करना भी नहीं आता।"—कहते हुए दादी के पोपले मुँह में ज़रा-सी मुस्कुराहट भी फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा—"दादी, इससे पूछो तुम इस शहर में और भी कभी आये थे या पहली ही बार आये हो? यहाँ के निवासी तो तुम हो नहीं!"

दादी ने इस कथन को दोहरने की चेष्टा की ही थी कि मिठाईवाले ने उत्तर दिया—"पहली बार नहीं, और भी कई बार आ चुका हूँ।"

रोहिणी चिक की आड़ ही से बोली—"पहले यही मिठाई बेचते हुए आये थे या और कोई चीज़ लेकर?"

मिठाईवाला हर्ष, संशय और विस्मयादि भावों में डूबकर बोला—"इससे पहले मुरली लेकर आया था; और उससे पहले खिलौना लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी कुछ बातें पूछने के लिए अधीर हो उठी। वह बोली—"इन व्यवसायों में तुम्हें क्या मिलता होगा?"

वह बोला—"मिलता तो भला क्या है? यही खाने-भर को मिल जाता है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हाँ, संतोष और धीरज और कभी-कभी असीम सुख ज़रूर मिलता है। और यही मैं चाहता हूँ।"

"सो कैसे? वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ मैं उन बातों की चर्चा क्यों करूँ? उन्हें आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आपको दुख होगा।"

"जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मैं बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हारा हर्जा न होगा। और भी मिठाईयाँ मैं ले लूंगी।"

अतिशय गंभीरता के साथ मिठाईवाले ने कहा—"मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर, सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का संसार था। बाहर संपत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख था। स्त्री सुंदरी थी, मेरी प्राण थी। बच्चे ऐसे सुंदर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने। उनकी अठखेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था। समय की गति! विधाता की लीला! अब कोई नहीं है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसीलिए अपने

उन बच्चों की खोज में निकला हूँ। वे सब अंत में होंगे तो यहीं कहीं। आख़िर कहीं जन्मे ही होंगे। उस तरह रहता, तो घुल-घुलकर मरता। इस तरह सुख-संतोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन से कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं में उछक-उछलकर हँस-खेल रहे हैं। पैसों की कमी थोड़े ही है! आपकी दया से पैसे तो काफ़ी हैं। जो नहीं है, इस तरह उसीको पा जाता हूँ।"

रोहिणी न अब मिठाईवाले की ओर देखा। देखा, उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गये। रोहिणी से लिपटकर, "अम्मा, मिठाई!"

"मुझसे लो" कहकर तत्काल काग़ज़ की दो पुड़ियों में मिठाइयाँ भर मिठाईवाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दीं।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिये।

मिठाईवाले ने पेटी उठायी और कहा—"अब इस बार ये पैसे न लूंगा।"

दादी बोली—"अरे-अरे न-न, अपने पैसे लिये जा भाई।"

किंतु तब तक आगे उसी प्रकार मादक, मृदुल स्वर में सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलानेवाला, मिठाईवाला!"

कठिन-शब्दार्थ

1. होली का उपहार

होली - हिन्दुओं का वह त्योहार जो फालगुन महीने के अंत में मनाया जाता है

उपहार - भेंट

शतरंज - चतुरंग का खेल (chess)

फ़ुरसत - अवकाश

बाज़ी - खेल

धड़कन - दिल का धक-धक करना

सौग़ात - भेंट का सामान

बालानशीन - अति उत्तम

व्यंग्य - चुटकी

हलका - कम

आग्रह - अनुरोध, ज़ोर

भावी - आनेवाला

बहस - तर्क-वितर्क

सोफ़ियाना - बढ़िया

बाना - बनावट, सजधज

साझा - हिस्सा, भाग

तमाशाई - तमाशा देखनेवाला

स्वयंसेवक - वालंटियर

प्रतिमा - मूर्ति

बुलबुला - bubble

विद्युत - बिजली, तड़ित

धरना - पिकेटिंग (picketing)

जवाब दे देना - साथ छोड़ देना, टूट जाना

सपाटा - दौड़, तेज़ी

परिस्थिति - दशा, हालत

दुविधा - असमंजस, चिंता

अन्धाधुंध - सोचे-विचारे बिना, बहुत तेज़ी से

आँखों में चर्बी छा जाना - गर्व के कारण किसीकी ओर ध्यान न देना

ढल जाएगी - नष्ट हो जाएगी

टिप्पणियाँ - टीकाएँ, आलोचनाएँ

रपट - रिपोर्ट (report)

बेड़ी - वह लोहे की जंजीर जो कैदियों के पैरों में डाली जाती है

गला छूटना - पिंड छूटना, छुटकारा मिलना

हाथों हाथ - लोग के हाथों के ज़रिये

हुड़दंगा - गड़बड़ी, झगड़ा

मुआमला - मामला, बात

दिक़ करना - परेशान करना

फ़रियाद - शिकायत

डाका - लूट, बटमारी

दिलासा - धैर्य
मेरी भी खबर लेते - मुझे भी पीटते
भर्त्सना - डाँट-डपट
लिहाज - शील संकोच
फ़रमाइश - आज्ञा
मजबूर - बाध्य, लाचार
नकेल - ऊँट, बैल आदि की नाक में कील लगाकर जो रस्सी बाँधते हैं, उसे नकेल कहते हैं।
अवरुद्ध - रुका या रुधा हुआ
पानीदार - आत्मसम्मानयुक्त, स्वाभिमानी

2. गूदड़ साईं

गूदड़ - फटा हुआ कपड़ा, चिथड़ा
साईं - फ़कीर
मुहल्ला - शहर का एक हिस्सा
बैरागी - संन्यासी
नज़र बचाकर - छिपाकर
सराहना - प्रशंसा करना
उलाहना - शिकायत
आदान-प्रदान - लेना-देना
चाव - रुचि
बिगड़ना - नाराज़ होना
पाश्चात्य - पश्चिम का (western)
ढोंगी - धोखेबाज़
चिढ़ - घृणा
ओझल हो जाना - छिप जाना
ठिठकना - रुकना
चपत - थप्पड़
चौराहा - जहाँ चार रास्ते मिलते हों, चौक
ठोकर लगना - टकराना
खिझाना - चिढ़ाना, दिल्लगी उड़ाना
रुलाई - रोना
उचक्का - धोखा देकर चीज़ चोरी करके भागनेवाला, बदमाश
गलबाँही डालना - गले में बाँह डालना
निरा - बिलकुल

3. प्रायश्चित्त

कबरी बिल्ली - सफ़ेद रंग काले, लाल, पीले आदि दागवाली बिल्ली
बहू - पत्नी, पुत्र-वधू
मायका - माँ का घर
ससुराल - ससुर का घर
दुलारी - प्यारी

करधनी - कमर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना

छक्के पंजे - चालबाज़ियाँ

ऊँघना - बैठे बैठे सोना

मिसरानी - खाना पकानेवाली स्त्री

जिस - सामान

नदारद - गायब

दुश्वार - मुश्किल, कठिन

रबड़ी - ओटाकर गाढ़ा किया हुआ दूध बसौंधी

कटोरी - प्याली (cup)

बालाई - मलाई

मोरचाबन्दी - लड़ाई की तैयारी

कटघरा - काठ का पिंजड़ा

निगाह - दृष्टि

सरगर्मी - जोश, उत्साह

फ़ासला - दूरी

हौसला - हिम्मत

झिड़कियाँ - डांट-डपट

मखाना - कमल का भूना हुआ बीज

औटना - अच्छी तरह उबालना

सोने का वर्क - सोने का पत्र

ताक़ - वस्तु रखने के लिए दीवार में बना हुआ स्थान, आला

अंदाज़न - अनुमान से

फूल - तांबे और राँगे के मेल से बनी हुई एक धातु bellmetal

चंपत होना - ग़ायब हो जाना

खून सवार हो जाना - बहुत क्रोधित हो जाना

न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी - जड़ से नष्ट हो जाना

कमर कसना - दृढ़ निश्चय करना

दाँव - युक्ति

देहरी - चौखट की निचली लकड़ी threshold

खिसकना - धीरे-धीरे चला जाना, सरकना (to slip away)

पाटा - लकड़ी का छोटा और कम ऊँचा आसन

रसोई - भोजन

महरी - नौकरानी

घटनास्थल - वह स्थान जहाँ पर कोई विशेष बात हुई हो

ताँता बंध जाना - एक-एक करके लगातार आते रहना

बौछार - वर्षा

पतोहू - पुत्र-वधू, बहू

तोंद - pot-belly

घेरा - घिराव (circumference)

पंसेरी खुराकवाले - पाँच सेर खाना एक बार में खानेवाले

पन्ना - पृष्ठ

मत्था - माथा

धुंधलापन आना - उदासी छा आना

माथे पर बल पड़ना - आकृति से गुस्सा आदि भाव प्रकट होना
तौल - वजन, भार
विधान - नियम
रुआसी - रोनी सूरत
ऐसे-वैसे - साधारण
हाथ का मैल - मामूली चीज़
अखरना - बुरा मालूम होना
मुँह मोड़ना - इनकार करना
पोथी पत्रा - किताब व काग़ज़
बटोरना - जमा करना, समेटना
बखत - वक़्त
हाँफना - तीव्र श्वास लेना

4. पट्टी

तड़का - प्रातःकाल, सबेरे
अदबदाकर - हठ करके, अचानक
काट खाना - दांत से काटना
ज़ाहिरा तौर पर - प्रकट रूप में
चित करना - पीठ के बल गिरा देना
बदहवासी - बेहोशी
टांग लेना - लटकाना
गमला - पौधे लगाने का बरतन
मोहलत - फुरसत, अवकाश
मूजी - दुष्ट, खल
दुरुस्त - ठीक
छिलना - ऊपरी चमड़े का कुछ भाग कटकर अलग होना, ख़राश आना
लोशन - घाव आदि धोने की द्रव औषध (lotion)
तफ़सील - विस्तृत वर्णन, ब्यौरा
सूजन - फूलाव, डोट के कारण फुलना (swelling)
ज़हरबाद - एक प्रकार का भयंकर विषैला रोग
हुलिया - शक्ल, आकृति
जकड़बंद करना - खूब कसकर बाँधना
कार्रवाई - काम
लाहौल बिला कूवत - इसका अर्थ है 'ईश्वर के सिवा और कोई शक्ति नहीं है।' इसका प्रयोग प्रायः घृणा या तिरस्कार सूचित करने के लिए किया जाता है।
क़हक़हा लगाना - ज़ोर से हँसना
लानत - धिक्कार, भर्त्सना
सिंदूर - कुंकुम
मज़ाक उड़ाना - हँसी उड़ाना
गिट्टी - टूटे हुए मिट्टी के घड़े का टुकड़ा

छाल - bark of a tree
ब्यौरा - वर्णन
ख़रबूज़ा - ककड़ी की जाति का एक गोल फल
पुड़िया - काग़ज़ में लपेटी वस्तु
बेहदा - अशिष्टतापूर्ण (बात)
बला टलना - आफ़त दूर होना
नातिक़ा - बोलने की शक्ति
घुन्नाकर - क्रोध को मन ही में रखकर
अलबत्ता - निस्संदेह
नाक में दम आना - बहुत हैरान हो जाना
मनौअल - रूठे को मनाना
नोचना - नख से घाव करना
मग़ज़ खाना - बेकार तंग करना, दिमाग़ चाटना
गोकि - यद्यपि
छींक - sneeze
फ़ौजीनुमा - सैनिक-जैसे
महाजन - बनिया
दरअसल - असल में, सचमुच
दल-दल - कीचड़
साबका - संबंध, मौक़ा
बाकर - खोलकर
ताल - तालाब
मामला पेश आया - घटना घटी
नोक - सूक्ष्म अग्र भाग (point)
क़िस्सा गढ़ना - झूठमूठ बातें बनाकर कहना
छकड़ा - बोझ लादने की बैलगाड़ी
जगह की पड़ना - जगह की फ़िक्र होना
तबादला - स्थान-परिवर्तन (transfer)
सादगी - सरलता
चुटकी लेना - नोचना, व्यंग्य-परिहास करना
वाक़या - घटना, वृत्तांत
बनिस्बत - अपेक्षा
नया आगंतुक - नया आनेवाला
बंदूक़ की नाल - bore of a gun
बजाय - बदले
बल खाती हुई - कोमलता के कारण लता की तरह लचकाती हुई
इठलाती - सौंदर्य के गर्व में मटक-कर चलती हुई
साली - पत्नी की बहन
ज़ीना - सीढ़ी (staircase)
आहट - किसीके आने का शब्द
हड़बड़ाकर - विचलित होकर
मौजूदगी - उपस्थिति
बाजू - तरफ़

5. अपना-अपना भाग्य

रेशा - तंतु या महीन सूत

अरुण - लाल

पोलोवाला मैदान-पोलो (एक तरह का खेल) खेलने का मैदान

प्रमोद-गृह - क्रीड़ा-स्थल

पार्श्व - बगल

पाल - लंबा कपड़ा जो नाव में ऊपर तानते हैं (sail)

डोंगी - छोटी नाव

बंसी - मछली फँसाने का काँटा (fishing hook)

समग्र - सारा, समूचा

बीता - भूतकाल (past)

अविरत - लगातार

छोर - किनारा

बाग़ - लगाम

नौनिहाल - होनहार बच्चे

दुम हिलाना - पीछे-पीछे लगा रहना, खुशामद करना

बुजुर्गी - बड़प्पन

कोड़े फटकारना - चाबुक लगाना

दामन - आँचल

तह - fold

गरिमा - गौरव

परिवेष्ठन - आवरण

सहमना - डरना

इक्का-दुक्का - अकेला-दुकेला

दर्पण - आईना (mirror)

लुप्त होना - ग़ायब हो जाना

घनीभूत - बहुत घना, भयंकर

संसृति - सृष्टि, संसार

निर्भेद्य - जो छेदा न जा सके

कुहरा - mist, fog

बृहदाकार - बहुत बड़ा, लंबा चौड़ा

बारिश - वर्षा

सनक - धुन (whim)

थमना - रुकना

चुना - किसी द्रव-पदार्थ का बूँद-बूँद होकर नीचे गिरना, टपकना

चारा - उपाय

खुजलाना - to itch

दायाँ - right (बायाँ - left)

चुंगी - municipal tax

झुर्री - wrinkle

एकाकी - अकेला

दोशाला - shawl

मोजे - जुर्राब stockings

चप्पल - जूते

ऐरे-गैरे - अपरिचित, तुच्छ व्यक्ति

मसहरी-मच्छरदानी (mosquito-curtain)

कड़ाके की सर्दी - बड़े ज़ोर की ठंड
भट्ठी - ईंटों आदि का बना हुआ बड़ा चूल्हा
सकपकाना - आश्चर्यचकित होना
असमंजस - दुविधा
बेहयाई - निर्लज्जता
ठिठुरना - सर्दी से ऐंठना या सिकुड़ना
कफ़न - शव के ऊपर डालने का कपड़ा

6. गोरा

मौरूसी - पैतृक
हद - सीमा
निभना - निर्वाह होना
जून - समय, बार
रबी की फ़सल-वसंत ऋतु की फ़सल
बाड़ा-घर या खेत का घिराव fence
ख़तरा - आफ़त, जोखिम
प्रांतर भाग - भीतरी हिस्सा
ढाक - पलास का पेड़
कुंड - गढा
हड़बड़ाकर - जल्दी आतुर होकर
मनुष्येतर - मनुष्य से भिन्न
पुट्ठा - चूतड़ के ऊपर का कड़ा भाग
मस्तानी - मदमत्त
कुट्टी - बारीक काटा हुआ चारा
सास्ना - गाय बैलों के गले के नीचे लटकती हुई खाल (dewlap)
दलील - तर्क
पड़ाव करना - ठहरना, डेरा डालना
नुमाइश - प्रदर्शिनी (exhibition)
ख़ब्त - सनक
ख़ातिरदारी - सम्मान, आदर
प्रतिस्पर्धा - किसी काम में दूसरे से बढ़ जाने का उद्योग (competition)
भिड़ाना - लड़ाना
ऊबड़-खाबड़ - अटपटी, असमतल
अनिष्ट - बुराई
कारिंदा - गुमाश्ता (clerk)
उन्मुक्त - स्वतंत्र
भाँप लेना - ताड़ लेना, पहचान लेना
सहन - आँगन
निठल्ला - बेकार
आनाकानी - टालमटोल
मुंह माँगा दाम - जितना रुपया माँगे उतना
नकारात्मक - जिसमें नकार हो, अर्थात् 'नहीं'
बेगार - बिना पैसा दिये जबर्दस्ती लिया हुआ काम

चौमासा-वर्षाकाल के चार महीने— आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन

गड्डा - गाड़ी, छकड़ा

खोह - गुफा

मटियाला - मिट्टी के रंग का

बौखला उठाना - गुस्से से पागल हो उठना

इन्द्र-धनुष - rainbow

गुर्राना - to growl

अनिमेष - टकटकी लगाकर, एकटक

पर्याप्त - काफ़ी enough

आश्रितवत्सल - शरण में आये हुए की रक्षा करनेवाला

घुलाना - दुर्बल होना, गलना (to dissolve)

लगान - भूमि कर (revenue)

7. देशभक्त

काटों में घसीटना - किसीकी इतनी अधिक प्रशंसा या आदर करना जिसके योग्य वह अपने को न समझे। जब कोई किसीकी अत्यधिक प्रशंसा या आदर करता है तब नम्रता प्रकट करने के लिए यह कहा जाता है।

ऊब जाना - to get fed up

मौलिकता - originality

कटाक्ष - तिरछी नज़र

कलियुगिये - कलियुग के

क्षिति - पृथ्वी, मिट्टी

सम्मिश्रण - मिलावट, मेल

भौंहें तानना - क्रुद्ध होना

अवस्था - उम्र, आयु

"नाम चतुरानन···गये" - हे ब्रह्मन् नाम तो आपका 'चतुरानन, (चार मुंहवाला) है, फिर भी आप ग़लती करते ही चले गये'।

प्रजापति - ब्रह्मा

कमलापति - विष्णु

कामारि - शिव

अभूतपूर्व - जो पहले न हुआ हो

प्रसन्नवदना - प्रसन्न मुखवाली

इंदिरा - लक्ष्मी

लीलाधर - श्रीकृष्ण, विष्णु

आनन्द-विभोर - आनन्द-मग्न

"परित्राणाय···युगे-युगे" - साधुओं की रक्षा, दुर्जनों का नाश और धर्म के पुनरुद्धार के लिए मैं

(भगवान) हर एक युग में अवतार लेता हूँ। (भगवद्गीता)

सुरसरिता - गंगा

कारागार - क़ैदख़ाना

हथकड़ी-बेड़ी - लोहे के कड़े जो क़ैदी के हाथ-पैर में पहनाये जाते हैं

पारस - एक कल्पित पत्थर जिससे यदि लोहा छुआ जाए, तो सोना बन जाता है

त्रिंशत्कोटि - तीस करोड़

आरूढ़ होना - सवार होना

समर्थक - समर्थन करनेवाला

न्यायाधीश - जज (judge)

पंचतत्व - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश

मुखरित - शब्द करते हुए

04103

8. कर्तव्य

दूजा - दूसरा

मयस्सर - प्राप्त

बिछोह - वियोग

गंडक - उत्तर की एक नदी

उतावले थे - जल्दी मचा रहे थे

भँवर - बहाव में वह स्थान जहाँ पानी की लहरें एक केन्द्र पर चक्राकार घूमती हैं whirlpool

ऐलान करना - घोषणा करना

धोती की फेंट कसना - धोती कसकर कमर से बाँध लेना

विलग - अलग

व्यस्त - व्याकुल, व्यग्र

तल्लीन - मग्न

अवहेलना - तिरस्कार, लापरवाही

अनुकंपा - हमदर्दी, सहानुभूति

तैराक - जो अच्छी तरह तैरना जानता हो

निर्वाहोपरांत - निकलने के बाद

अलफ़ - ऐसी घटना का होना जिससे मौत होते-होते बच जाय

शृंखला - जंज़ीर

उधेड़बुन - दुविधा, चिंता

गहन - कठिन

आँखें छलछला आना - आँसू भर आना

झकोर - झोंका

क्षुधित - भूखा

04103

९. मिठाईवाला

स्नेहाभिषिक्त . प्रेम भरा
उपर्युक्त - ऊपर कहा हुआ
चिक - परदा
छज्जा - balcony
हिलोर - लहर
साफ़ा - पगड़ी turban
मादक - नशा उत्पन्न करनेवाला
स्मरण - याद, स्मृति
सूथनी - चूड़ीदार पायजामा
ढीला पड़ना - to become loose
लटकना - टँगना
ठग - धोखेबाज़
एहसान - उपकार, कृतज्ञता
अप्रतिभ - प्रतिभाहीन, उदास
लागत - वह ख़र्च जो किसी चीज़ के बनाने में लगे
ग्राहक - customer
दस्तूर - रीति, प्रथा
दुअन्नी - दो आनेवाला सिक्का
फेरीवाला - घूम-घूमकर सौदा बेचनेवाला व्यापारी peddier
आजानुविलंबित - घुटने तक लटकता हुआ
ज़ायकेदार - मज़ेदार, स्वादिष्ठ
टिकना - ठहरना
खाँसी - cough
पोपला - बिना दाँतों का मुँह
दोहराना - दुबारा कहना
व्यवसाय - काम-धंधा, व्यापार
संतोष - तृप्ति
असीम - जिसकी कोई हद न हो, सीमारहित
उत्सुक - अत्यंत इच्छुक
हर्ज़ - नुक़सान
अतिशय - बहुत
अठखेली - विनोद-क्रीड़ा
तर - भीगा हुआ
पुड़िया - मोड़कर संपुट के आकार का किया हुआ काग़ज़

V. Krishnamoorthy, B.A., Praveen,
ASSISTANT & AGENT,
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA,
TIRUPATI. (A.P.)

VERIFIED-2001

Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras-17

NAU KAHANIYAN

Price : Rs. 2.00